वर्ष 4 ◆ अंक 3 ◆ आषाढ़-श्रावण-भाद्रपद, 5124 कलि. ◆ जुलाई-अगस्त-सितंबर, 2022 ई., मूल्य : ₹ 100

सभ्यता संवाद

जनस्वास्थ्य, विज्ञान और परंपराएं

विश्व में महामारियां
रवि शंकर

वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियाँ और महामारी
सन्त समीर

ग्रामीण स्वास्थ्य और भारतीय चिकित्सा प्रणालियां
ममता रानी

कोविड-19 उपचार के लिए विविध - डब्ल्यूएचओ प्रोटोकॉल तथा उपचार प्रविधि : कुछ विरोधाभास
संध्या झा

भारतीय ज्ञान परंपरा व आयुर्वेद: षड्यंत्र और विस्मृति
डॉ. शिव पूजन प्रसाद पाठक, डॉ. प्रशांत कुमार त्रिवेदी

पारंपरिक उपचारक (वैद्य), औषधीय पौधे और बाजार श्रृंखला: एक अनिश्चित पेशा
डॉ. नीतू गोस्वामी

शोध-अध्ययनों से प्रमाणित हुई यज्ञ की वैज्ञानिकता
पूनम नेगी

मानसिक स्वास्थ्य पर योग का प्रभाव
डॉ. सुजाता पांडा

सिर की गम्भीर चोट के बाद संज्ञानात्मक एवं व्यवहारात्मक परिवर्तनों पर मंत्रों की सुनियोजित पुनरावृत्ति के प्रभाव
डॉ. अजय चौधरी, डॉ. अशोक कुमार

स्थायी स्तंभ

व्यक्तित्व : राधेश्याम खेमका : जिन्होंने बताया कि संपादन भी एक धार्मिक-अनुष्ठान है!
डॉ. जयप्रकाश सिंह

एनसीईआरटी समीक्षा : पोषण का विज्ञान बनाम यूरोपीय शारीरिक ज्ञान / रवि शंकर

पुनर्पाठ : आयुर्वेद का संक्षिप्त इतिहास : आदि काल / रत्नाकर शास्त्री

पुस्तक परिचय : अश्विनौ महिमा / वैद्य सुरेन्द्र चौधरी

गतिविधियां : आजादी का अमृत महोत्सव व्याख्यानमाला / अवधेश मिश्र

सभ्यता अध्ययन केन्द्र की त्रैमासिक शोध–पत्रिका

Center for Civilisational Studies
सभ्यता अध्ययन केंद्र

सभ्यतागत जनसंचार में प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम (ऑनलाइन)

जानें, समझें, अपनाएं

- संचार की भारतीय परम्पराओं को
- संचार की भारतीय अवधारणाओं को
- सभ्यतागत विमर्श में जनसंचार की भूमिका को

सीखें, प्रयोग करें

- तार्किक, वस्तुपरक, विषयपरक लेखन
- स्पष्ट व प्रभावी सम्प्रेषण
- आंकड़ों, तथ्यों का विश्लेषण
- सोशल मीडिया की तकनीकें
- और भी बहुत कुछ...

शीघ्रता करें

योग्यता : किसी भी विषय में स्नातक

पाठ्यक्रम अवधि : 06 माह

सम्पर्क

B-14, Street No. 13, Village Wazirabad, Delhi-110084

Phone : 9017831916, 9899588033

Email : academy.ccsdelhi@gmail.com

Website : www.civilisationalstudies.org

सभ्यता संवाद

वर्ष-4, अंक-3

आषाढ़-श्रावण-भाद्रपद, 5124 कलि.

जुलाई-अगस्त-सितंबर, 2022 ई.

मूल्य : ₹ 100

◆

मार्गदर्शक–मण्डल

डॉ. ओमप्रकाश पाण्डेय   प्रो. रामेश्वर प्रसाद मिश्र पंकज   प्रो. राजकुमार भाटिया

प्रो. कुसुमलता केडिया   डॉ. आनंद बर्धन

◆

संपादक मण्डल

श्री ऋतेश पाठक   डॉ. विवेक भटनागर

डॉ. जयप्रकाश सिंह   डॉ. शिवपूजन पाठक

◆

संपादक

रवि शंकर

◆

कार्यकारी संपादक

धीप्रज्ञ द्विवेदी

◆

सह संपादक

मीनाक्षी   ओंकार नाथ   सुनील कुमार झा

◆

प्रबन्ध संपादक

बृजेश श्रीवास्तव   शुभ्रा सिंह

◆

संपादकीय कार्यालय

सभ्यता अध्ययन केन्द्र

बी14, गली. नं. 13, वजीराबाद गांव, दिल्ली–110084

दूरभाष : 901783196, 9899588033

ईमेल : sabhyatasamvad@gmail.com, www.civilisationalstudies.org

फेसबुक : https://www.facebook.com/sabhyatasamvad/

◆

सभ्यता संवाद में प्रकाशित निबन्धों में प्रतिपादित विचारों और तथ्यों का उत्तरदायित्व निबन्ध–लेखकों का है और उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। सभी प्रकार के विवादों का निपटारा नई दिल्ली, सक्षम अदालतों और मंचों के क्षेत्राधिकार के अधीन है।

सभ्यता अध्ययन केन्द्र के लिए रवि शंकर द्वारा बी–14, गली नं. 13, वजीराबाद गाँव, दिल्ली–110084 से प्रकाशित एवं प्रिंट-वे, 182 एफआईई, पटपड़गंज, इण्डस्ट्रियल एरिया, नयी दिल्ली–110092 से मुद्रित। संपादक: रवि शंकर

इस अंक में

- **संपादकीय** 5
- **विश्व में महामारियां**
  रवि शंकर 6
- **वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियाँ और महामारी**
  सन्त समीर 12
- **ग्रामीण स्वास्थ्य और भारतीय चिकित्सा प्रणालियां**
  ममता रानी 21
- **कोविड-19 उपचार के लिए विविध - डब्ल्यूएचओ प्रोटोकॉल तथा उपचार प्रविधि : कुछ विरोधाभास**
  संध्या झा 27
- **भारतीय ज्ञान परंपरा व आयुर्वेद: षड्यंत्र और विस्मृति**
  डॉ. शिव पूजन प्रसाद पाठक, डॉ. प्रशांत कुमार त्रिवेदी 40
- **पारंपरिक उपचारक (वैद्य), औषधीय पौधे और बाजार श्रृंखला: एक अनिश्चित पेशा**
  डॉ० नीतू गोस्वामी 49
- **शोध-अध्ययनों से प्रमाणित हुई यज्ञ की वैज्ञानिकता**
  पूनम नेगी 57
- **मानसिक स्वास्थ्य पर योग का प्रभाव**
  डॉ. सुजाता पांडा 63
- **सिर की गम्भीर चोट के बाद संज्ञानात्मक एवं व्यवहारात्मक परिवर्तनों पर मंत्रों की सुनियोजित पुनरावृति के प्रभाव**
  डॉ. अजय चौधरी, डॉ. अशोक कुमार 69

स्थायी स्तंभ

व्यक्तित्व

- **राधेश्याम खेमका : जिन्होंने बताया कि संपादन भी एक धार्मिक-अनुष्ठान है!**
  डॉ. जयप्रकाश सिंह 75

एनसीईआरटी समीक्षा

- **पोषण का विज्ञान बनाम यूरोपीय शारीरिक ज्ञान** / रवि शंकर 77

पुनर्पाठ

- **आयुर्वेद का संक्षिप्त इतिहास : आदि काल** / रत्नाकर शास्त्री 81

पुस्तक परिचय

- **अश्विनौ महिमा** / वैद्य सुरेन्द्र चौधरी 91

गतिविधियां

- **आजादी का अमृत महोत्सव व्या ख्या नमाला** / अवधेश मिश्र 95

संपादकीय

कैसे पूरा होगा स्वस्थ देश का सपना?

ग??????????

भील आदिवासियों की प्रकृति पूजा और उनका देवलोक

✍ डॉ. तरूण दांगौडे

सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)

माखनलाल चतुर्वेदी शासकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, खण्डवा म.प्र.

भील प्राचीन भारतीय जनजातियों में से एक जनजाति है। वेद, उपनिषद, पुराण, रामायण, महाभारत एवं संस्कृत साहित्य में भीलों का निषादों के नाम से उल्लेख हुआ है। पाँच सौ वर्ष ईस्वी पूर्व की प्रजाति तालिका में भी भीलों की गणना की गयी है।''विविध भाषाओं के भारतीय साहित्य के समान भीली भाषा का लोक साहित्य भी अज्ञात, अलौकिक, अतिप्राकृतिक सत्ता के प्रति आस्थावान है। भीलों में भारतीय परंपरा के मनिषियों के समान प्रकृति की उपासन का प्रचलन मातृशक्ति के रूप में है। इसलिए भील ईश्वरीय सत्ता से अपना संबंध स्थापित करने हेतु पारिवारिक संबंधों का हवाला देते हैं। भील अपने आप को भगवान का साला (साला नै भील आला) कहकर गौरवान्वित अनुभव करते है। साला अर्थात मातृ-देवियों एवं लोकदेवियों का भाई बनकर वह दिव्य अलौकिक लोक में मध्यस्त बनकर लोक देवताओं एवं लोकदेवियों के प्रति आस्था व्यक्त करते हैं। भीलों के सामाजिक जीवन में धार्मिक आस्थाओं एवं धार्मिक अनुष्ठानों का विषेष महत्व है। इसलिए भील जन्म से मृत्यु पर्यन्त धार्मिक अनुष्ठानों को सादगी एवं प्रवित्र भावों के साथ सम्पन्न करते हैं। यह कर्तव्यनिष्ठा और आस्था भीली भाषा के धार्मिक अनुष्ठानों, गाथाओं, गायणों और कहावतों में सुरक्षित है।

प्रकृति उपासक होने के कारण भीलवर्ष भर पर्व-उत्सव, त्यौहार आदि धार्मिक क्रियाओं का आयोजन करते हैं। प्रकृति के प्रति भीलों का दृष्टिकोण उपभोक्ता वादी नहीं है अपितु उपासनावादी है। भीलों की ऐसा मान्यता है कि मातृदेवियों ने उका सृजन प्राकृतिक संपदा की रक्षा व सेवा के लिए किया है। इसीलिए भील उठते-बैठते, खाते पीते जब भी प्राकृति संपदा का उपभोग करता है, तब प्रकृति के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता है। यथा:-

‘‘कुलनी देवी कुलनों देव, गाऊँदेव घाटदेव
अंसरीमाता घींचरीमाता, गँवरामाता, काजलराणी
कंलकामाई, कमलमाई, छीतामाई, धरती माई
गाऊँ नो हौलेमान, ने गाऊँ नो देव बाप देव

रामदेव, पीढ़ी राणु, साठीराणु, इंदीराणु
भीलेट बाबु मादेव बाबु म्हारा भोला भगवान
गाऊँ नो डाहलों ने गाऊँ नो मोरेल
गाऊँ नो जूनलु पौटेल ने गाऊँ नो नवलो पौटेल
ने में कौरू राम राम ।‘‘

::2::

एक साधारण ग्रहस्थ भील दिन में पाँच से दस बार इस मंत्र का स्मरण करता है किन्तु भीलों के ‘‘सरकारी लुग’’(सामाजिक पदाधिकारी पटेल, पूँजारा, बड़वा, व चैकीदार) तो इस मंत्र के दूसरे ‘‘चैये’’(मंत्र के दूसरे खंड जो 25 से 30 मिनट का होता है) का भी गायन करते हैं । इस मंत्र का मुख्य विषय प्रकृति एवं अलौकिक लोक के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करना है।

भीलों के जीवन में अग्नि, जल एवं धरती माई (माटी) को अत्यन्त पवित्र माना जाता है। इसलिए भील कभी चिमनी या दीये की अग्नि को फूंक मारकर नहीं बुझाता अपितु हाथ या पल्लू से हवा देकर बुझाता है। अग्नि के स्थान (चूल्हा, अलाव) को गंदा नहीं करता । भील जल को मानव जाति के लिए प्रकृति का उपहार मानता है। भीलों की, यह भी मान्यता है कि भगवान ने हमें जल पीने और स्नान करने के लिए दिया है न कि मल, मूत्र आदि के निवारण के लिए, भील धरती को माँ मानते हैं। तथा उनकी प्रत्येक पूजा में धरतीमाई से जुड़ी स्तुतियाँ है। भील कभी-कभी अपनी सत्यता को प्रमाणित करने के लिए कहता है। ’’ धरती माईनी कोसम मी झूठ नी बुलतो। ’’

भील मातृदेवी उपासक होते हैं। इसलिए भीली लोक सहित्य में असंख्य मातृदेवियाँ और लोक देवियाँ हैं। भील माता गँवरा (गौरी पार्वती) को -आखा मानसान माई (समस्त मानव जाति की माता) कहते हैं। उनकी मान्यता है कि माता गँवरा ने ही सृष्टि का सृजन किया है । जब अंधकारमय ब्रह्रामाण्ड में ’’मादेवजी (महादेवजी) ’’ समाधिस्थ हो गये तब माता गँवरा ने अपने मनोरंजन के लिए खेल-खेल में अपने हाथों के छालों को मसल कर त्रिदेवताओं ’’ बिरम देव, बिसणूजी ,भोलाभगवान (ब्रह्राजी ,विष्णु षिव)की उत्पत्ति करती हैं। सृष्टि के सफल संचालन के लिए अपनी देह से काजलराणी, मोंगरमाता , सतिमाता, गऊँरबाई, सहितबाई, ईणुमाता, गाजमाता, अभिमाता, दूदीमाता, धींचरीमाता, अंसरीमाता, ओकारामाता, छीतलामाई, कलकामाता, खोखलीमाता, गलतीमाता, बुखारीमाता, लक्षमीबाई, सवितरीमाई, आसासरी, महिमासरी, छीतामाता आदि देवियों को प्रकट करती है। इन मातृदेवियों मे से एक दिन कंलका माता को भूख लगती है, किन्तु सृष्टि के उत्पत्ति काल में मांस भक्षण के लिए कोई दैत्य, दानव, पशु नहीं उपलब्ध होता इसलिए कंलकामाता अपनी बहनों के सो जाने के बाद त्रिदेवताओं को खा जाती है। जब अन्य देवियों को यह पता चलती है तो वह कंलकामाता को फटकार लगाती है, तब कंलकामाता नाराज होकर कहती है कि मैं तुम्हारे ऐसे तीन के बारह ब्रह्मों की सृष्टि कर सकती हूँ ऐसा कह कर कंलका माता बारह ब्रम्हो

को जन्म देती है तथा फटकार लगाने वाली बहनों (मातृदेवियों) की सेवा के लिए अपने भाल के मेल से धर्म के भाई की सृष्टि करती है। भाल के मेल से प्रकट होने के कारण धर्म के भाई को मातृ-देवियॉ ''भील''कहने लगी। भील मातृदेवियों की सेवा इतनी तन्मयता से करता है कि वह लोक व्यवहार भूल जाता हैं। इसलिए भीलों को हर कोई ठगने लगा, माता गँवरा से अपने धर्म के भाईयों की ऐसी दुर्दशा देखी नहीं गई। उन्होंने मादेवजी के गले के नाग को भीलों का कुलदेवता ''भीलटबाबा''बना दिया तथा भीलों की रक्षा का भार भीलटबाबा को सौंप दिया।

::3::

''भीलटबाबा''ने डमरू बजा कर भीलों को 'नागमोति मंत्र' की दीक्षा दी ताकि भील नागपाश और बुरी आत्माओं से भी अपनी रक्षा कर सकें।

आज भी भील अपनी इस परम्परा का वहन करते हुए ''भीलटबाबा''की प्रसन्नता के लिए श्रावण मास की पंचमी को थालपर्व का आयोजन करते हैं। इस पर्व में बड़वा भीलों को नागवंश में सम्मिलित करने के लिए नागमोति मंत्र की दीक्षा देता हैं। नागमोति की दीक्षा मिल जाने के बाद भील अलौकिक शक्तियों को पा लेता है। वह भूत, भविष्य एवं वर्तमान की घटनाओं को देख सकता है। भूत, प्रेत एवं अनेक प्रकार के जहीरीले जीवों का जहर उतार सकता है। नागमोति बन जाने के बाद भील इसके नियमों का कठोरता से पालन भी करता है।

बारह ब्रम्हा एवं मातृशक्तियों ने जब सृष्टि सृजन का कार्य प्रारम्भ किया तब मातृ शक्तियों ने भीलों को ''महुड़े की दारू''का प्रसाद पिलाकर मादेवजी के डमरू से बन ''ढाक''नामक वाद्य को बजाने के लिए दिया। उसे आज्ञा दी कि हम सृष्टि उत्पति का जितना कार्य करे उसके तुम गीत बना लो। भीलों ने सृष्टि उत्पति की गीत, गाथा, कथा, गायणे, चैये एवं मंत्र बनाये, सृष्टि उत्पति का पवित्र कार्य भीलों से विस्मृत न हो इसलिए भीलों ने ''इंदल पूँजा, काजल राणीचा गायणा, साढ़ीराणा चा गायणा, भीलना का गायणा एवं ''मादेव गॅवरा'' की कथा आदि बनाये सृष्टि सृजन का यह आदिम गीत भीलों का वाचिक परंपरा एवं साहित्य में उपलब्ध है।

भीलों का जीवन प्राकृतिक जीवन है। इसलिए उनके पर्व त्यौहार प्राकृतिक उपादनों से जुड़े है। धरती, आकाश, जल अग्नि, वायु, पर्वत, पहाड़, नाग, पशु अन्न, नदियाँ, वृक्ष औषधियाँ आदि की पूजा वह अपने प्रत्येक पर्व त्यौहारों पर करता हैं। यह पर्व त्यौहार सदियों से भीली लोक की आस्था का संवहन करते हैं।

आरंभ से भील मातृदेवी उपासक हैं। अतः भीली देवलेक में लोक-देवताओं की अपेक्षा लोक देवियों की संख्या अधिक हैं। यहाँ भीलों के प्रमुख देवी-देवताओं का नामोल्लेख मात्र ही किया जा सकता हैं क्योंकि भीलों की आस्थाओं का आकार अत्यन्त विस्तृत है जसमें अनगिनत देवी-देवताओं का प्राकट्य होता रहता है, जिनकी गणना करना असंभव है। भीली देवलोक को निम्नलिखित वर्गो में विभाजित किया जा सकता हैः-

देवियाँः- भीली मातृदेवियॉ, भीली लोक देवियॉ और सतियॉ

भीली देवताः- भीली लोक देवता ओर भीली लोक नायक

मानवेत्तर देवता:-पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, पहाड़,नदियाँ आदि एवं समस्त पवित्र आत्माएँ।

भीली देवियाँः-

'भीली मातृदेवियाँ':- ये मातृ देवियाँ ही भील समुदाय की कुल देवियाँ हैं। इनके नाम हैंः- गँवरामाई, छीतलईमाई, मोटीमाता, छोटीमाता, खोखलीमाता, गलतीमाता, बुखारीमाता, घिंचरीमाता, अंसारीमाता, बीजासणी, गाजमाता, दुदीमाता, जाईबाई, ईणुमाता, कमलामाई, लिमोलीमाता, काकडईमाता, कंलकामाता, छटीमाता, पद्मा नागेन

::4::

लोक देवियाँः- गऊँरबाई, सहितबाई, इणुबाई, गजराबाई, रोहेणबाई, लाडीबाई, रणुबाई, सवित्रिबाई, लक्ष्मीबाई, काजलराणी, आसासरी, महिमासरी, सातमातरी जीझाकुंदन, वाघासरी, काठीमाई, धरतीमाई, जोसाराणी, भोगवाकुमारी, ये आदि शक्तियॉ उनका जीवन, पोषण और रक्षण करती है

सतियाँः- काजलराणी, भागाराणी, छीताराणी, सबरीमाई, आसामाई, लालबाई, फूलबाई, रूणादेवी, झूणा देवी, मोगरमाता, मुगली कुवासणी देवी, दरोपता, सुभदरा, ग्यारसमाता, समोतीमाता, सवितरी, कुन्ती, गेन्दा, तुलसा, रूकमा, जसमा, परभा, देवकी, जसौदा,कौसलियॉं, फूला, सेवन्ता, सुमितरा, मोहबाई, नानीबाई, रूमली, झूमली मीरा, राधा, गंधारी आदि सतियॉँ आती है। सतियॉ ऐतिहासिक और पौराणिक पात्र होतीं है।

भीली लोक देवताः-

भीली लोक देवताः- मादेवजी, बिरमाजी, विसणुजी, भीलटबाबों, हनमानबाबों, घाटबाबों, बापदेव, खेतरपाल, कुलदेवतों, सुढोल देव, गुवालीबाबु, लाकड़ीयुबाबु, मोतिबाबों।

भीली लोक नायकः-साठीराणा, इंदीराणा, कुंदीराणा, पीढ़ीराणा, आभा कुलमी, सरवन, पाढूराणा, भीम, अरजुन, जुधीष्टर, नकुल, सईदवे, राजाबली,बालासूर, सिंगाजी, नरसिंग,थापला, मेंदागवली, टंट्यामामा, आसा अहिर, नरवर, आला-उदल हरिसचंद, दसरत, करण, बाल्यों भील, रायसिंग गवली

(स) मानवेत्तर देवताः-

जीव जन्तु, पशु-पक्षी, जड़-चेतन आदि पवित्र आत्माएंः-

भीलों ने जिन जड़ चेतन जीवों को लाभ पहुँचाते देखा उन्हे अपना देवता मान लिया जैसेः नाग, कुत्ता, गाय, बैल, हाथी, शेर, बंदर, मेढ़क, गुगलगाय, किसानियों, किड़ो, पीपल, नीम, बड़, कलम का वृक्ष जामुन का वृक्ष, सातपुड़ियों बयडो (सतपुड़ा पर्वत) पावानु डंगूर(पावागढ़ का पर्वत), बिदिंयापाल (विध्यांचल पर्वत) नो बयड़ो आदि।

समस्त पवित्र आत्माएँ:- कालीयु भूत, धोवलीयु भूत, मोगलीयु भूत, चुहाणाी-भुवाणी भूत, लोहारी भूत, जोहरीयु भूत, लाहुँबाई की वांदरी, महिसासरु , बहिसासुर। भीली देवलोक के इस संक्षिप्त वर्णन में केवल भीलों के प्रमुख देवी-देवताओं का ही नामोल्लेख हैं।

निष्कर्षः- भीलों की आस्था एवं भीली देवलोक को परिभाषित करना कठिन एवं

श्रमसाध्य कार्य है, क्योंकि भीली की आस्थाओं का विस्तार दिन-प्रति दिन विस्तार पाकर अलौकिक लोक का पवित्र एवं निश्छल भावों से समृद्ध करते रहता है। भीलों के इन पवित्र एवं निश्छल भावों ने अनगिनत देवी-देवताअओं की सृष्टि की है। इसलिए भीली देवलोक के विषय में कहा गया है कि ''भीलांचे देव न दगड़े देव''(भीलों के देवी-देवता अर्थात पत्थरों का ढेर) भीली देवी-देवता पत्थरों के समान कहीं भी स्थापित हो जाते है। इस प्रकार इस प्राचीन जनजाति की आस्थाओं के अनेक रूप वाचिक परंपरा में है। भीली भाषा का अधिकांश साहित्य मौखिक परंपरा में है उसका लेखन नहीं हुआ है। कतिपय विद्धानो ने जो कार्य किया वह अल्प मात्रा में है। अतः भीलों की आदिम आस्थाओं और भीली देवलोक पर शोध अनुसंधान की असिम संभावनाऐं है।

::5::

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. नदीम हसनैन : जनजातिय भारत
2. ए.एन.वर्मा : भारतीय मानव विज्ञान
3. डॉ. नैमीचन्द्र जैन : भीली का भाषा शास्त्रिय अध्ययन
4. डॉ. नैमीचन्द्र जैन : भीली का भाषा संस्कृति और साहित्य
5. देवकी बाई सोलंकी (93) ग्रा. खातला तह. नेपानगर जिला बुरहानपुर दि. 12.05.2009
6. सुमला हरसिंग देवड़ा (47) ग्रा. हरसिंग फालिया तह. झिरन्या जिला खरगोन दि.30.08.2009
7. बलीराम जामले (38) ग्रा. रोडिया तह. भीकनगांव जिला खरगोन दिनांक 09.01.2009
8. ललिताबाई भार्वे (48) ग्रा. बमनाला जिला खरगोन दिनांक 10.11.2010
9. रूकमणीबाई मासरे (45) ग्रा. बड़दा तह. पंधाना जिला खण्डवा दिनांक 10.11.2010
10. भीमसिंग डाबर (35) ग्रा. कुसुम्बिया फालिया तह. झिरन्या दिनांक 25.07.2010
11. गोटियाराम भार्वे (80) ग्रा. मारूगढ तह. झिरन्या जिला खरगोन दिनांक 28.07.2010
12. प्रेमबाई दांगौड़े (60) ग्रा. झिरन्या जिला खरगोन दिनांक 30.08.2010
13. रेशम मौरे (73) ग्रा. पंधाना तह.पंधाना जिला खरगोन दिनांक 30.08.2010
14. नानलों सिसौदिया (86) ग्राम खातला तह.नेपानगर जिला बुरहानपुर दि. 28.09.2010
15. डॉ. तरूण दांगौड़े (परियोजना सहायक) यू.जी.सी.की वृहद्ध शोध परियोजना:- निमाड़ अंचल आदिवासी समुदायों का सामाज भाषिक अध्ययन (भील, भिलाला, बारेला, राठिया, पाठक्या एवं पटेल के विशेष संदर्भ में) के सर्वेक्षण के अनुसार।

सनातन के लिए जीवन समर्पण करने वाले

✍ क्रांतिकारी संत गोविन्द गुरु

लेखक स्वतंत्र पत्रकार एवं होम्योपैथ चिकित्सक हैं।

भारत में क्रिश्चियन मिशनरी के खिलाफ सबसे सक्षम आन्दोलन दक्षिण राजस्थान में 19वीं शताब्दी के आखिरी दशक में उभरा। इस आन्दोलन को इतिहासकारों ने स्थानीय शासकों के दमन और भारी-भरकम करों के विरोध में उठे आन्दोलन की संज्ञा दे दी। जबकि पूरे आन्दोलन में इसका ऐसा स्वरूप कहीं नजर ही नहीं आता। यहां तक कि आन्दोलन के लिए रचा गया साहित्य भी अंग्रेजी सत्ता और मिशनरियों के खिलाफ दिखाई देता है। आन्दोलन का नेतृत्व करने वाले गोविन्द गिरी या गोविन्द गुरु महर्षि दयानन्द से प्रभावित होकर उन्हें अपना प्रेरणा स्रोत मानते थे। वनांचल में निवास कर रहे स्थानीय निवासियों को बरगला कर ईसाई बनाने के लिए प्रयासरत अंग्रेजी शासन और कैथोलिक मिशनरी को जब उन्होंने इस क्षेत्र में उभरते देखा तो वे उद्वेलित हो गए और उन्होंने इसका विरोध करने का विचार किया। अंग्रेजी वसूली के दबाव में डूंगरपुर राज्य में कर का भार भी बढ़ता उन्हें दिख रहा था, तो अंग्रेजों के विरोध का प्रथम स्वरूप उन्हें करों के विरोध में आन्दोलन के रूप में समझ आया।

गोविंद गुरु ने अपने आन्दोलन का नाम दिया 'भगत आंदोलन' और 1890 के दशक में इसे आरम्भ कर दिया। आंदोलन को अग्नि देवता को समर्पित कर उन्होंने वैदिक परम्परा को अपनाया लेकिन स्थानीय जनता में नाथ सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा होने के कारण उन्होंने नाथ धूणियों के माध्यम से अलख जगाने की ठानी। इसके लिए उन्होंने अपने अनुयायियों के लिए पवित्र अग्नि के समक्ष खड़े होकर पूजा के साथ-साथ हवन (अर्थात धूणी) करना का नियम बनाया। इससे पूर्व उन्होंने संगठन के गठन के लिए 1883 में 'सम्प सभा' की स्थापना की। इसके द्वारा उन्होंने अपने अनुयायियों को शराब, मांस, चोरी, व्यभिचार आदि से दूर रहने और परिश्रम कर सादा जीवन जीने, प्रतिदिन स्नान, यज्ञ एवं कीर्तन करने, विद्यालय स्थापित कर बच्चों को पढ़ाने, अपने झगड़े पंचायत में सुलझाने, अन्याय न सहने, अंग्रेजों के लिए जागीरदारों को लगान न देने, बेगार न करने तथा विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कर स्वदेशी का प्रयोग करने जैसे सूत्रों का गांव-गांव में प्रचार किया।

कौन थे गोविन्द गुरु

गोविंद गुरु ने भगत आंदोलन की राह में 5 लाख लोगों को अपना अनुगामी बना लिया था। वे दक्षिणी राजस्थान के वनांचल क्षेत्र के सामाजिक और धार्मिक सुधारक गोविन्द गुरु ने वर्तमान दक्षिणी राजस्थान व उत्तर गुजरात के वन क्षेत्र (वागड़) और मध्य प्रदेश के मालवा और नीमाड़ वन क्षेत्र के स्थानीय निवासियों में 'भगत आन्दोलन' के नाम से क्रान्ति का सूत्रपात किया। गोविन्द गुरु का जन्म 20 दिसम्बर, 1858 को डूंगरपुर जिले के बांसिया (बेड़िया) गांव में गवारिया जाति के एक बंजारा परिवार में हुआ था। उन्होंने न तो किसी स्कूल-कॉलेज में शिक्षा ली थी और न ही किसी सैन्य संस्थान में प्रशिक्षण पाया था। अंग्रेजी हुकूमत के दिनों जब भारत की आजादी में हर व्यक्ति अपने-अपने ढंग से योगदान दे रहा था तब अशिक्षा और अभावों के बीच अज्ञान के अंधकार में जैसे-तैसे जीवनयापन करते आदिवासी अंचल के निवासियों को अंग्रेजी मिशनरियों के खिलाफ धार्मिक चेतना की अलख जगाने का काम गोविंद गुरु ने किया। वे ढोल-मंजीरों की ताल और भजन की स्वर लहरियों से आम जनमानस को आजादी के लिए उद्वेलित करते थे। 30 अक्टूबर, 1931 को ग्राम कम्बोई (गुजरात) में उनका देहान्त हुआ। प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष पूर्णिमा को उनकी समाधि पर आकर लाखों लोग उन्हें श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हैं।

यह था आन्दोलन का स्वरूप

उन्होंने आंदोलन का विस्तार में 1800 धूणियों, 72 धामों की स्थापना की और लोक जागरण का कार्य किया। उनके मार्गदर्शन में सर्वप्रथम बेड़सा स्थित छाणी मगरी धाम पर प्रथम शिष्य कुरीया, ज्योति महाराज, लेबा, वाला रोत, जोरजी, कलजी, भेमा, कालू, गलिया, कुरा, पूंजा के साथ धूणी में हवन कर लोगों में देश के प्रति भावना भक्ति मार्ग की अलख जगाई थी। कुछ ही समय में अनुयायियों की संख्या पूरे वनांचल में फैल गई और प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष पूर्णिमा को 'सम्प सभा' का वार्षिक मेला होता था, जिसमें लोग हवन करते हुए घी एवं नारियल की आहुति देते थे। लोग हाथ में घी के बर्तन तथा कन्धे पर अपने परम्परागत शस्त्र लेकर आते थे। मेले में सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं की चर्चा भी होती थी। इससे वागड़ का यह वनवासी क्षेत्र धीरे-धीरे ब्रिटिश सरकार तथा स्थानीय सामन्तों के विरोध की आग में सुलगने लगा। इस प्रकार गोविन्द गुरु ने भारतीय संस्कृति के अनुरूप जनजागरण के लिए यज्ञ, तप और अर्चन को अपना शस्त्र बनाया और शास्त्र सम्मत विरोध किया। इसने अंग्रेजों को इस बात के लिए मजबूर कर दिया कि वे गोविन्द गुरु और उनके अनुयायियों में डर पैदा करे। जिसका परिणाम हमें मानगढ़ नरसंहार में दिखाई देता है।

मानगढ़ नरसंहार

17 नवम्बर, 1913 (मार्गशीर्ष पूर्णिमा) को मानगढ़ की पहाड़ी पर वार्षिक मेला होने वाला था। इससे पूर्व गोविन्द गुरु ने शासन को पत्र द्वारा अकाल से पीड़ित वनवासियों से खेती पर लिया जा रहा कर घटाने, धार्मिक परम्पराओं का पालन करने देने तथा बेगार के नाम पर उन्हें परेशान न करने का आग्रह किया था लेकिन प्रशासन ने पहाड़ी को घेरकर मशीनगन

और तोपें लगा दीं। इसके बाद उन्होंने गोविन्द गुरु को तुरन्त मानगढ़ पहाड़ी छोड़ने का आदेश दिया। उस समय तक वहां लाखों भगत आ चुके थे। पुलिस ने कर्नल शटन के नेतृत्व में गोलीवर्षा प्रारम्भ कर दी, जिससे हजारों लोग मारे गये। इनकी संख्या 1,500 से तक कही गई है। पुलिस ने गोविन्द गुरु को गिरफ्तार कर पहले फांसी और फिर आजीवन कारावास की सजा दी। 1923 में जेल से मुक्त होकर वे भील सेवा सदन, झालोद के माध्यम से लोक सेवा के विभिन्न कार्य करते रहे।

गोविन्द गुरु का परिवार

क्रांतिकारी संत गोविंद गुरु के बड़े बेटे हरिगिरि का परिवार बांसिया में छोटे बेटे अमरूगिरि का परिवार बांसवाड़ा जिले के तलवाड़ा के पास उमराई में बसा है। गोविंद गुरु के जन्म स्थान बांसिया में निवासरत परिवार की छठी पीढ़ी उनकी विरासत को संभाले हुए है। गोविंद गुरु के पुत्र हरिगिरि, उनके बेटे मानगिरि, उनके बेटे करणगिरि, उनके बेटे नरेंद्र गिरि और छठी पीढ़ी में उनके बेटे गोपालगिरि मड़ी मगरी पर रहकर गुरु के उपदेशों को जीवन में उतारने का संकल्प प्रचारित कर रहे हैं।

अंग्रेजों और मिशनरियों को विरोध करता गोविन्द गुरु का साहित्य

गोविन्द गुरु ने संगठन के विस्तार और संदेश को आमजन तक पहुंचाने के लिए साहित्य सर्जन किया। आम जनता में अंग्रेजों की उपस्थित मिशनरी के माध्यम से ही थी और वे उसे अंग्रेजिया या भूरेटिया कह कर सम्बोधित करते थे। उन्होंने अलख जगाने के गीतों में अंग्रेजों को सम्बोधित किया है, जो आम जनता के अंग्रेजों से वाकिफ होने की प्रमाण है। उदाहरण के लिए, गोविंद गुरु अंग्रेजों की नीतियों को खूब समझते थे और उन्हें वे ‘भूरेटिया’ कहते थे। वे इस बारे में लोगों यह गीत गाकर बताते थे,

दिल्ली रे दक्कण नू भूरिया, आवे है महराज।
बाड़े घुडिले भूरिया आवे है महराज।।
साईं रे भूरिया आवे है महराज।
डांटा रे टोपीनु भूरिया आवे हैं महराज।।
मगरे झंडो नेके आवे है महराज।
नवो-नवो कानून काढे है महराज।।
दुनियां के लेके लिए आवे है महराज।
जमीं नु लेके लिए है महराज।।
दुनियां नु राजते करे है महराज।
दिल्ली ने वारु बास्सा वाजे है महराज।।
धूरिया जातू रे थारे देश।
भूरिया ते मारा देश नू राज है महराज।।

निम्नलिखित पंक्तियों में गोविन्द गुरु अंग्रेजों से देश की जमीन का हिसाब मांग रहे हैं और बता रहे हैं कि सारा देश हमारा है। हम लड़कर अपनी माटी को अंग्रेजों से मुक्त करा लेंगे।

तालोद मारी थाली है, गोदरा में मारी कोड़ी है,
अंग्रेजिया नई मानू नई मानूं।
अमदाबाद मारो जाजेम है -2 कांकरिये मारो तंबू है,
अंग्रेजिया नई मानू नई मानूं। 3-3.....
धोलागढ़ मारो ढोल है, चित्तौड़ मारी सोरी (अधिकार क्षेत्र) है,
अंग्रेजिया नई मानू, नई मानूं।
आबू में मारो तोरण है, वेणेश्वर मारो मेरो है,
अंग्रेजिया नई मानू, नई मानूं।
दिल्ली में मारो कलम है, वेणेश्वर में मारो चोपड़ो है,
अंग्रेजिया नई मानू, नई मानूं।
हरि ना शरणा में गुरु गोविंद बोल्या, जांबू (देश) में जामलो (जनसमूह) जागे है,
अंग्रेजिया नई मानू, नई मानूं।।

वास्तविकता में ये गीत भजन है और "राज है महराज" जैसे टेक गाए जाते हैं। किन्तु भजन कम, राजनीतिक चेतना का गीत अधिक है। इस गीत को गोविंद गुरु सभी शिक्षण देने में काम लेते थे। वे सभी को भारतीय संस्कृति और उसके विस्तार की व्यापकता को बताने के लिए इन गीतों का उपयोग करते थे। इस प्रशिक्षण को जनजागृति का हिस्सा बनाने के लिए उन्होंने अपनी भाषा वागड़ी का उपयोग किया। उनका दृढ़ मत था कि आन्दोलन के लिए और संस्कृतिक संदर्भ के लिए भाषा स्थानीय होनी चाहिए और इसी से जनांदोलन उपजता है। यह उनकी राजनीति समझ को भी हमारे सामने स्पष्ट करता है।

संदर्भ

1. पानगड़िया बी.एल. 2019, 32वां संस्करण, राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जोधपुर
2. जहूर खां मेहर, राजस्थान में स्वतंत्रता संघर्ष, जगदीषसिंह गहलोत शोध संस्थान, जोधपुर, 1991
3. वी.के. वषिष्ठ, भगत मूवमेंट, जयपुर, 1997
4. एम.एस. जैन राजस्थान थ्रू एजेज, भाग-3, राजस्थान स्टेट आर्काइव्ज, बीकानेर, 1996
5. बी.के. शर्मा, ट्राइबल रिवॉल्ट्स, जयपुर, 1996
6. Khan, Ismail. 1986. Indian tribe through the ages. Vikas publishing house, New Delhi.
7. S. Gajrani. 2004. History, Religion and Culture of India: History, religion and culture of Central India Gyan Publishing House, India

भूमिका

✍ ?????????

??????????????

ऋग्वेद में आर्य, दास तथा दस्यु शब्दों को देखकर पाश्चात्य विद्वानों ने यह मिथ्या कल्पना की कि वैदिक काल में आर्य तथा दास भिन्न-भिन्न जातियां थीं। प्रो० ए० ए० मैक्डानल एवं प्रो० कीथ ने अपनी रचना "वैदिक-इण्डैक्स" के दो भागों में वेदों में आए 'वर्ण' तथा 'जाति' आदि पदों के सम्बन्ध में १६१२ ई० में लन्दन से यह ग्रन्थ प्रकाशित किया था। उन्होंने लिखा कि आर्य और दासों में परस्पर युद्ध होते थे; आर्य लोग उन आदिवासी दासों के पुरों (नगरों) को विध्वंस कर देते थे। उनका कहना है कि वेद में आदिवासियों और उनकी प्रजा का भी वर्णन है। आर्य- दास युद्धों में जब कुछ आदिवासी मर जाते थे तो शेष जीवित आदिवासियों को पकड़कर अपना दास बना लेते थे। उन आदिवासी द्रविड़, कोल, भील, संथाल आदि का वर्ण कृष्ण होता था। उनमें कई "अनास" अर्थात् बैठी हुई नाक वाले होते थे। उनकी बोली कठोर होती थी । आर्य ओर दासों में प्रमुख रूप से धर्म का अन्तर था। दास लोग आर्य देवताओं से घृणा करते थे, वे यज्ञों के विरोधी थे। दासों का मुख्य धर्म लिङ्ग-पूजा था। इसलिए वेद में उन्हें शिश्नदेव" कहा गया है। आर्य लोग दासों की स्त्रियों को अपनी दासी अर्थात् नौकरानी बना लेते थे। इसी प्रकार पाश्चात्य विद्वानों ने लिखा कि जहां दास तथा दस्यु लोगों का आर्यों के साथ युद्ध होता था वहां आर्य का आर्यों के साथ भी युद्ध हुआ करता था । इस प्रकार की अनेक निराधार कल्पनाएं उन्होंने अपने ग्रन्थों में की हैं ।

वेद के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों ने ऐसा क्यों किया ? इसका मुख्य कारण था कि अंग्रेजों को भारत पर राज्य करना था और उनकी मुख्य नीति यह थी कि आर्यों के आदि ग्रन्थ ऋग्वेद पर ही कुठाराघात किया जाए, जिससे यह सिद्ध किया जाए कि वेद में लिखे हुए "दास" तथा "दस्यु" भारत के आदिवासी ही हैं। वे इस देश के मूल निवासी थे जिन्हें आर्य लोगों ने बाहर से आकर भारत भूमि से खदेड़ा और उन्हें युद्धों में परास्त करके भारत को सदा के लिए अपने अधीन कर लिया ।

फूट के इस बीजारोपण से भारत की द्रविड़, कोल, भील आादि जातियों में सदा के लिए सवर्ण हिन्दुओं के विरुद्ध घृणा उत्पन्न हो गई, जिसका कुपरिणाम हम इस समय भी देख रहे हैं।

प्रथम याक्रमण

वैदिक-साहित्य को भ्रष्ट करने के लिए १५ अगस्त २८११ को कर्नल बोडन नामक एक व्यक्ति ने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय को अपने स्वीकार-पत्र (Will) के अनुसार पुष्कल धन राशि दी और उस धन के लिए शर्त यह थी कि उससे अंग्रेजों को आर्य-साहित्य का ज्ञान कराया जाय, जिसमे वे इस साहित्य को जानकर हिन्दुओं को ईसाई बना सकें। विश्वविद्यालय में यह काम मोनियर विलियम को सौंपा गया।

बोडन ट्रस्ट का उद्देश्य - -

Chair of oriental studies and the Oxford University under Boden Trust, whose chief object was as follows as given by Monier William in the Introduction to his well known Sanskrit English Dictionary.

"That the special object of his (Boden's) - munificient bequest was to promote the translation of the seriptures into English, so as to enable his countrymen to proceed in the conversion of the natives of India to christian religion."

मोनियर विलियम ने बोडन ट्रस्ट के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है-

बोडन साहब के इस ट्रस्ट को महान् दान करने का यह प्रसिद्ध लक्ष्य था कि भारत की संस्कृत पुस्तकों का अनुवाद करके देशवासियों को इस योग्य बनाया जाय कि वे संस्कृत ग्रन्थों को जानकर भारतीय जातियों का धर्म परिवर्तन करके ईसाई बनाए।

सन् १८११ से लेकर ओक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में यह काम चलता रहा। संस्कृत इङ्गलिश डिक्शनरी तैयार हो गई और बहुत से अंग्रेज छात्रों को आर्यो के साहित्य की शिक्षा दी जाने लगी। शिक्षक वर्ग अध्यापन काल में ही छात्रों को संस्कृत साहित्य के साथ-साथ ऐसी शिक्षा भी देते गये कि जिससे वे भारत में जाकर हिन्दुओं के मनों को कलुषित कर सके।

मैकाले का भारत आगमन

मैकाले जो एक पादरी परिवार में उत्पन्न हुआ था और जो पीछे लार्ड मैकाले बन गया, वह सन् १८३४ में 'लीगल एडवाइजर टु दि कौंसिल ग्राफ इण्डिया' बन कर भारत में आया और यहां पर उसे ऐजूकेशन बोर्ड का प्रधान बनाया गया। वह यहां चार वर्ष रहा और इन चार वर्षो में भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में घूमकर उसने अनुभव किया कि जिस प्रकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी राज्य को चला रही है। उससे हम हिन्दुओं को ईसाई नहीं बना सकते, इसलिये उसने पहला कार्य यह किया कि भारतवर्ष में जहां-जहां संस्कृत पढ़ाई जाती थी, उसे अनुदान देना बन्द करवाया और कलकत्ता में स्थानीय कालेज को मिलने वाला अनुदान (Grant) भी बन्द कर दिया गया।

जब वह १८३६ में इङ्गलैण्ड पहुंचा तो उसने कहा कि संस्कृत मैंने इसलिये बन्द की कि यदि संस्कृत का अध्ययनअध्यापन इसी प्रकार जारी रहा तो भारत में हम अंग्रेजी सभ्यता को नहीं फैला सकेंगे।

संस्कृत भाषा हिंदुओं के धर्म ग्रन्थों का मूल है, यदि हम इस मूल भित्ति को समाप्त कर देंगे और इसके स्थान में शिक्षा अपने हाथ में लेकर अंग्रेजी का शिक्षण कर देंगे तो बिना किसी प्रयत्न के बंगाल के हिन्दु विशेषकर उच्च जातियों के हिन्दु स्वयमेव ईसाई बन जायेंगे।

मैकाले ने जो पत्र अपने पिता को लिखा उसी से उसकी मानसिक भावना जानी जा सकती है

"Calcutta October 12, 1836- My dear Father our english school are flourshing wonderfully the effect of this education on the Hindus is prodigious. No Hindu who has received an English education, ever remaius sincirely attached to his religion. Some continue to profess it as a matter of policy, and some embrace Christionity. It is my belief that, if our plans of education are followed up, there will not be a single idsplater among the respectable Casts in Bengal thirty years hence. And this will be effected with out any efforts to praselytise, with out the smallest interference with religions liberty by natural operations of Knowledge and reffection. I heartly rejoice in the prospect – Ever yours most effectionately.

—T. B. Macaillay.

मैकाले ने कलकत्ता से १२ अक्तूबर १८३६ को अपने पिता को इस प्रकार पत्र लिखा

मेरे प्यारे पिता ! हमारे अंग्रेजी स्कूल बड़ी शीघ्रता से उन्नति कर रहे हैं। इस अंग्रेजी शिक्षा का हिन्दुओं पर बड़ा लाभकारी प्रभाव हुआ है, कोई भी हिन्दु जिसने अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की है अपने धर्म के प्रति श्रद्धावान् नहीं रहेगा। कईयों ने तो इस शिक्षा से ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया है यदि यह शिक्षा प्रचलित रही तो अब से ३० वर्ष के भीतर-भीतर कोई भी उच्च जाति का हिन्दु बंगाल में मूर्तिपूजक नहीं रहेगा। इस प्रकार बिना किसी यत्न के और इनके धर्म में बाधा डाले बिना ये स्वयमेव ईसाईयत की और प्रवृत्त हो जायेंगे। इस प्रकार की उन्नति से मैं बहुत प्रसन्न हूं। प्रापका प्यारा टी० बी० मैकाले का - मकाले के इस पत्र से सिद्ध हो जाता है कि वह संस्कृत पठन-पाठन सर्वथा बन्द करके अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार इसलिये करना चाहता था कि भारत की उच्च जातियों के हिन्दु अपने धर्म को छोड़कर ईसाई धर्म में प्रवेश करें। वास्तव में मैकाले का नाम टी० बी० मैकाले था- परन्तु भारत के लिए वह टी० बी० का रोग सिद्ध हुआ। - मैकाले से एफ० मैक्समूलर की भेंट मैकाले सन् १८३६ में जब इङ्गलैण्ड में आया तब वह एक संस्कृत के विद्वान् की खोज में था, वह ऐसा विद्वान् चाहता था: जो वेद के सम्बन्ध में योग्यता रखता हो। एच० एच० विलसन और वारोन वुनसन के द्वारा मैकाले को पता लगा कि जर्मन देशोत्पन्न मैक्समूलर इस काम के योग्य है।

दिसम्बर १८५४ को मैक्समूलर और मैकाले की भेंट हुई। उस समय मैकाले ५५ वर्ष

का अनुभवी तथा कुशल राजनीतिज्ञ बन चुका था और मैक्समूलर ३२ वर्ष का नवयुवक था। मैकाले और मैक्समूलर की कई घण्टे बात-चीत होती रही और मैकाले ने मैक्समूलर को कहा कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी लाखों रुपये व्यय करने को उद्यत है यदि आप हिन्दुग्रों के आदि ग्रन्थ ऋग्वेद का अनुवाद करें और इस ढंग से लिखें कि जिससे वैदिक विचारधारा को भ्रष्ट किया जाए। तुम इस काम में अंग्रेजी सरकार को सहयोग दो और हिन्दुओं के हृदयों में वेद के लिये प्रश्रद्धा उत्पन्न करो, जिससे अंग्रेजी राज्य की नींव सुदृढ़ हो और हिन्दुओं को बिना किसी यत्न के ईसाई बना सकें।

मैक्समूलर की नियुक्ति

मकाले के सुझाव से जर्मन देशोत्पन्न इंग्लैड वासी प्रो० ५० नक्समूलर ने यह काम १८५५ में प्रारम्भ किया। मैक्समुत्तर ने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में वेदानुसंधान के काम में सन् १८५५ ई० लेकर १६०० ई० तक वेद के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा। भारतीय लोग यह समझते रहे कि मैक्समूलर ने वेदानुसन्धान करके वैदिक-साहित्य के लिए बड़ा उपकार किया है, परन्तु मैक्समूलर के हृदय में तो वेद को जड़ से नष्ट करने की भावना थी; उसका लक्ष्य था कि वैदिक विचारधारा तथा श्रद्धा को नष्ट करके भारत में ईसाई मत का बीजारोपण किया जाए। मैक्समूलर का लक्ष्य उनके निम्न पत्रों द्वारा सिद्ध होता है

प्रथम पत्र – मैक्समूलर ने १८६६ में अपनी पत्नी को लिखा था

“I hope I shall finish the work and I feel convinced though I shall not live to see it yet this addition of mine and the translation of the Veda will here after tell to great extent on the fate of India and on the growth of millions of souls in that country. It is the root of their religion and to show them what the rootis. I feel sure, is the only way of uprooting all that has sprung from it during the last three thousand years. अर्थात् मुझे आशा है कि मैं यह कार्य सम्पूर्ण करूंगा और मुझे पूर्ण विश्वास है, यद्यपि मैं उसे देखने को जीवित न रहूंगा, तथापि मेरा यह संस्करण वेद का आद्यन्त अनुवाद बहुत हद तक भारत के भाग्य पर और उस देश की लाखों आत्माओं के विकास पर प्रभाव डालेगा। वेद इनके धर्म का मूल है और मुझे विश्वास है कि इनको यह दिखाना ही कि वह मूल क्या है - उस धर्म को नष्ट करने का एक मात्र उपाय है, जो गत ३ सहस्र वर्षों से उससे (वेद से) उत्पन्न हुआ है। द्वितीय पत्र - यह पत्र १६ दि० १८६८ को उन्होंने तत्कालीन भारत के मन्त्री ड्यूक ग्राफ प्रार्गायल को लिखा था- The ancient religion of India is doomed, if christianity does not step in, whose fault will it be ? भारत के प्राचीन धर्म का पतन हो गया है; यदि अब भी ईसाई धर्म नहीं प्रचलित होता है तो इसमें किसका दोष है ? तृतीय पत्र - सन् १८६६ ई० में ब्रह्मसमाजी मिस्टर एन० के० मजुमदार को लिखा- "You know for how many years. I have matehed your efforts to purify the popular religion of India and thereby to bring it near to the purity and perfection of

१.यह तथा अगले पत्र Life and Letters of Max Mueller से उद्धृत हैं।

other religions, particularly of christianity...... Tell me some of your chief difficulties that prevent you and your countrymen From openly following christ.

अर्थात् तुम जानते हो मैंने तुम्हारे भारत के प्रिय धर्म को शुद्ध करने के प्रयत्न एवम् उसको अन्य धर्मों, विशेषकर ईसाई मत की पवित्रता और पूर्णता के समीप लाने के कार्य का अनेक वर्षों से अध्ययन किया है. तुम मुझे अपनी मुख्य परेशानियां बताओ जो तुम्हें तुम्हारे देशवासियों को स्पष्ट रूप से ईसाई बनने में बाधा डालती है।

चतुर्थ पत्र - प्रो० मैक्समूलर के एक मित्र ई० बी० पूसी ने उन्हें निम्नलिखित पत्र लिखा -

A friend of Poof. Max Mullar, Mr. E. B. Pussey writes to him thus:

"Your work will form a new era in the efforts for conversion of India and Oxford will have reason to be thankful for that, by giving you a home, it will have facilitated a work of such primary and lasting importance for the conversion of India, and which by enabling us to compare that carly false religion with the true illustrates the more than blessedness of what we enjoy."

"तुम्हारा कार्य भारत के धर्म परिवर्तन के प्रयत्न में एक नवीन युग का निर्माण करेगा और आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय आपको यह स्थान देकर धन्यवाद का पात्र है। यह मुख्य और अत्यन्त महत्वपूर्ण (वेदभाष्यादि) कार्य भारत के धर्म परिवर्तन के कार्य को सरल करेगा और। १२

ब्राह्मणग्रन्थों और निरुक्त के प्रति मैक्समूलर के निन्दनीय वाक्य

As the authors of the Brahmanas were blinded by theology, the authors of the still later Niruktas were deceived by etymological fictions, and both conspired to mislead by their authority later and more sensible commentators, such as Sayana.'

(" अर्थात् ब्राह्मण ग्रन्थकारों ने मतवाद से अंधे होकर पुस्तकें लिखी हैं और उनके पीछे निरुक्तकारों ने धातुवाद के झूठे आडम्बर में फंसाकर धोखा दिया है और इन दोनों प्रकार के लेखकों ने जनता को अपनी विद्वत्ता के कारण धोखा दिया है - और इनके पीछे के काल के सायण जैसे समझदार टीकाकारों को भ्रामक मार्ग पर डाल दिया है।'

ग्रिफ्थ का कार्य

आर० टी० एच० ग्रिफ्थ जो पहले बनारस कालेज का प्रिंसिपल था। उससे ऋग्वेद का अंग्रेजी अनुवाद सन् १८८६ में कराया गया, जिसमें वेद के विचारों को भ्रष्ट करने के लिये उसने अपने भाष्य में मनमानी की, उसका कुछ दिग्दर्शन नीचे कराया जा रहा है

दासपत्नीरहिगोपाः। ऋक् १।३२।११॥

इस मन्त्र की टिप्पणी में दास पद पर टिप्पणी करते हुये लिखा है कि जंगली, डाकू भारत के अनार्यों में से कोई एक।

1. See preface Page XI of Griffith's English Translation of Rig Veda. १४

It means also, a savage, a barbarian, one of the non-Aryan inhabitants of India.

प्राभिः स्पृधः। ऋक् ६।२५।२ ॥

इस मन्त्र का अनुवाद करते हुये "दासों की जातियां" (Tribes of dasas) वाक्य उसने अपने आप जोड़ दिया है। मन्त्र में कहीं भी जाति का वर्णन नहीं है।

त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ प्रमित्रान्। ऋक् ६। ३३।३ ॥

इस मन्त्र के अनुवाद में लिखा है कि (Both races) दो जातियें। मन्त्र में उभयान् श्रमित्रान् पाठ है। इसका अर्थ है दो प्रकार के शत्रु। ग्रिफ्थ ने यहां पर प्रमित्र का अर्थ जाति किया है–

कृष्णा प्रसेधदप सद्मनो जाः। ऋक् ६।४७ २१ ॥

इस मन्त्र की टिप्पणी पर ग्रिफ्थ ने (Dark aborigines) "काले वर्ण के मूल निवासी" यह लिखा है- हालांकि वेद में मूल आदिवासी अर्थात् मूल निवासीवाची कोई शब्द ही नहीं है जिसका उक्त अर्थ किया गया है। यहां हमने स्थालीपुलाक न्याय से उद्धरण दिये हैं कि इस प्रकार वेद को भ्रष्ट करने लिए इन लोगों ने यत्न किया है।

मैक्समूलर के कुछ काल पीछे आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के अनुसन्धान विभाग का अध्यक्ष ए० ए० मैक्डानल को बनाया गया, उसने अपनी पद्धति को स्थायी रूप से प्रचलित रखने के लिये वेद के छात्रों के लिये – १. वैदिक रीडर फार स्टूडेंटस (Vedic Reader for students.) २. वैदिक ग्रामर (Vedic grammer), ३. वैदिक मैथालोजी (Vedic Mythology) १५

इन तीन ग्रन्थों को लिखा। सन् १९१२ में प्रो० कीथ के साथ मिलकर वैदिक इण्डेक्स नामक पुस्तक की रचना की। इस प्रकार अनेक ग्रन्थ वैदिक विचारधारा को भ्रष्ट करने के लिये लाखों रुपये व्यय करके अंग्रेज सरकार ने लिखवाये।

आर्य लोग भारत के बाहर से ग्राये हैं. भारत के मूल निवासी द्रविड-कोल – भील संथाल आदि ही यहां के आदिवासी थे, यह विचार सत्र से प्रथम कंम्ब्रिज हिस्ट्री श्राफ इण्डिया में दिया गया है।

नियम-बद्ध योजना – भारत में पाश्चात्य मान्यताओं का प्रसार करने के लिए बनारस और लाहौर में केन्द्र बनाए गए। बनारस में टी० एच० ग्रिफ्थ को बनारस कालिज का प्रिंसिपल बनाया गया। लाहौर में ए०सी० वूलनर को ओरिएन्टल कालिज का प्रिंसिपल बनाया गया। इन कालिजों में संस्कृत के एम० ए० उत्तीर्ण छात्रों (विशेषकर ब्राह्मण) को उच्चतम छात्र वत्ति देकर आक्सफोर्ड भेजा जाता था और जो उन्हें छात्र उन गौरांग महाप्रभुत्रों से शिक्षा लेकर

प्राते थे, प्रिंसिपल अथवा उच्च कोटि का प्रोफेसर बनाया जाता था। लाहौर और बनारस में दोनों प्रिंसिपल वेद की कक्षाओं को स्वयं पढ़ाते थे और वहां वही पद्धति पाठ्यक्रम की रखी गई थी जो आक्सफोर्ड में थी।

इस प्रकार भारतीय छात्र, जिन्हें अपने ग्रन्थों का कुछ भी ज्ञान नहीं होता था, विदेशी गुरुओं के पास जाकर उनके रंग में ही रंग जाते थे। इस तरह निरन्तर अनेक वर्षों तक यह योजना चलती रही। इसका परिणाम यह हुआ कि वे भारतीय विद्वान ही पाश्चात्य पद्धतियों के प्रचार और प्रसार ये साधन बन गए। इन भारतीयों ने भी वही राग अलापना प्रारंभ किया जो सन् १९४७ में अंग्रेज भारत छोड़कर चले गये, परन्तु दुःख है कि अभी तक भी विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विद्यालयों में उसी विषाक्त पद्धति से शिक्षा दी जा रही है और वही विषाक्त विषय पढ़ाये जा रहे हैं जिनमें आर्य, दास-दस्यु को भिन्न जातियां कहा गया है और यही सिखाया जाता है कि भारत के मूल निवासी आर्य नहीं थे। इन्होंने बाहर से आकर आदिवासियों पर आक्रमण किए और इन्हें अपना दास बनाया। जब तक इस भ्रान्त मान्यता को समूल नष्ट नहीं किया जायेगा, तब तक वैदिक संस्कृति और भारतीय चिन्तन खड़े नहीं हो सकते। वास्तव में आर्य, दास तथा दस्यु कोई जातियां नहीं थीं और न ही इनके युद्धों का वर्णन वेद में है। वेद में ये शब्द गुणवाचक है, जातिवाचक नहीं। जो पाश्चात्य लेखक ऋग्वेद में ग्रादिवासियों को चपटी नाक और काली त्वचा वाले बताते हैं. वह असत्य है। वे यह भी कहते हैं कि प्रायलोग आदिवासियों की बस्तियों (पुरों) का विध्वंस करते ये और कभी-कभी आर्यों का आर्यों के साथ भी युद्ध हो जाया के करता था। उनकी ये सारी बातें वेद और सत्यान्वेषण के विरुद्ध है। मेरा उनसे खुला प्रतिवेदन है कि वे सामने आए और इस विषय में चर्चा करें ताकि भारत से इस मान्यता को नष्ट किया जा सके।

प्रार्यसमाज मार्ग लाहौर वास्तव्य करोल बाग नई दिल्ली रामदास वधवात्मज रामगोपाल शास्त्री बंध

नामघर समीक्षा

✍ ????????????

?????????????

डॉ. शैलेंद्र कुमार की पुस्तक “नामघर” यूँ तो असम की सांस्कृतिक क्रांति और शौर्यगाथा को समग्रता में उद्भासित करने का एक सद्‌प्रयास है, किंतु उसमें असम की विभिन्न जनजातियों की सामाजिक, राजनैतिक, व धार्मिक जीवन यात्रा की अंतरधारा स्वाभाविक रुप से प्रवाहित होती है। लेखक ने असम की भौगोलिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति का चित्रण करते हुए समय-समय पर असम के घटते आकार, संथाल, मारवाडी व बांग्ला अप्रवासी की समस्या, असम की नैसर्गिक सुंदरता, पहाडी जनजातीय समाज का कृषि आधारित जीवन आदि का जीवंत चित्रण किया है। इसी प्रकार लेखक ने असम के तंत्रवाद, ब्राह्मणवाद, वैष्णव मत, शंकरदेव के एक शरण धर्म, तथा रानी गाइदिन्ल्यु द्वारा चलाए गए हेराका आस्था आदि की ओर भी ध्यान आकर्षित कराया है। असम में मुस्लिम घुसपैठियों की दीर्घकालिक समस्या व ईसाई मत के जनजातीय जीवन पर पडे दुष्प्रभावों का भी मार्मिक चित्रण किया है।

‘अपराजेय असम की शौर्यगाथा’, ‘श्रीमंत शंकरदेव की धार्मिक, सामाजिक व सांस्कृतिक क्रांति’, ‘असम में मुस्लिम घुसपैठ का इतिहास’, एवम ‘असम आंदोलन (1978-1985) और उसके बाद’ वे अध्याय हैं जो असम व वहां के लोकजीवन की प्रचुर व तथ्यात्मक सामग्री प्रस्तुत करते हैं। ‘असम भ्रमण’ नामक अध्याय एक रोचक यात्रा वृतांत है जो पाठक को सीधे असम के बीचोबीच ला खडा करता है। इस वृतांत को पडते हुए आप असमिया जीवन को प्रत्यक्ष देख रहे होते हैं। शिवसागर के विभिन्न डोल जो अहोम राजा की पत्नी रानी अम्बिका द्वारा बनवाए गए थे, रंगघर, तलातल घर, हाजो का हयग्रीव मंदिर आदि के सचित्र वर्णन अत्यंत आकर्षक बन पडे हैं। माजुलि के सत्रों की जानकारी भी वहां के धार्मिक सामाजिक जीवन को रेखांकित करती है।

असम की शौर्यगाथा में अहोम जनजाति के वर्णन में डा. शैलेंद्र कुमार बताते हैं कि अहोम (राजाओं) ने मुगलों को कई बार हराया। दोनों पक्षों के बीच डेढ दर्जन से भी ज्यादा बार युद्ध हुआ। अधिकतर बार या तो मुगलों को खदेड दिया गया, या फिर जीतकर भी वे

वहां अपना प्रभाव कायम नहीं रख सके। असम में आज भी 17वीं सदी के अहोम योद्धा लचित बडफूकन को याद किया जाता है। उनके नेतृत्व में ही अहोम ने पूर्वी क्षेत्र में मुगलों के विस्तारवादी अभियान को थामा था। केवल सात नौकाओं पर सवार अहोम सैनिकों ने मुगलों की विशाल सेना को उनकी कई नौकाओं सहित तितर बितर कर दिया और इस युद्ध में मुगल सेना की बुरी हार हुई। सरायघाट का युद्ध एक अद्भुत गौरव गाथा है। असम में 24 नबम्बर 'लचित दिवस' के रुप में मनाया जाता है।

लेखक आगे बताते हैं कि औरंगजेब की बडी शक्ति भी अहोम को वश में नहीं कर सकी। भारत के इतिहास का यह स्वर्णिम अध्याय है कि एक छोटे से अहोम राज्य ने अपने समय के विशाल साम्राज्य, मुगल साम्राज्य, को एक नहीं अनेक बार परास्त किया। अहोम की इस सफलता का श्रेय उनकी स्थायी सैन्य व्यवस्था को जाता है। सैन्य संचालन के लिए तीन मंत्री – बडगोहाईं, बडहागोहाईं, और बडपात्रगोहाईं- उत्तरदायी थे। इसके अतिरिक्त प्रांत प्रमुख भी सैन्य संचालन करते थे। थल सैनिक नियोग फूकन व जल सैनिक पानी फूकन के अधीन होते थे। इसी तरह एक पर्वतिया फूकन भी था। अहोम की सैन्य भर्ती प्रक्रिया भी विशिष्ट थी। सैन्य की पाइक व्यवस्था वास्तव में एक सामाजिक राजनीतिक संगठन था जिसके अंतर्गत असमिया समाज को शांति तथा युद्ध काल के लिए संगठित किया गया था। अहोम को समाज के सभी पुरुषों से सैन्य सहायता मिलती थी। 16 वर्ष से लेकर 50 वर्ष तक के सभी व्यक्ति पाइक के रुप में पंजीकृत होते थे। व्यावसायिक आवश्यकता के अनुसार पाइक 'खेल' के रुप में संगठित होते थे। बडे खेलों का नियंत्रण फूकन करते थे तो छोटे खेलो का नियंत्रण बरुआ। बीस पाइकों के ऊपर का अधिकारी बोरा, सौ पाइक के ऊपर सैकिया, हजार पाइकों के ऊपर का हजारिका, तीन हजार के ऊपर राजखोवा तथा छह हजार के ऊपर वाले को फूकन कहते है। भारत के एक कोने में अज्ञात स्थिति में धकेल दी गयी यह स्थानीय किंतु प्रभावी जनाजातीय शासन व सैन्य व्यवस्था आज भी अपने समुचित अध्ययन व उपयोग की अपेक्षा हम भारतीयों से रखती है।

लेखक बताते हैं कि सैकडों जनाजातियों अनेक भाषाओं और विविध परम्पराओं वाले समूहों को एक सूत्र में पिरोने का काम असम के संतों ने किया है। श्रीमंत शंकरदेव द्वारा स्थापित 'महापुरुषिया' या 'एक शरण धर्म' का अन्य असमियों के साथ वहां की जनजातियों में भी खूब प्रचार हुआ। शंकरदेव ने मूर्तिपूजा को स्पष्ट तौर से स्वीकार नहीं किया किंतु मूर्तिपूजा के खण्डन में भी नहीं लगे। एक शरण धर्म के द्वार सभी के लिए घोषित रुप से खुले थे। अनेक जनजातियों व अन्य समुदायों को नाम लेकर संबोधित करते हुए शंकरदेव जी कहते हैं –

किरात, कछारी, खासी, गारो, मिरी, यवन, कंक, गोवाल।
आसम, मुलुक, रजक, तुरुक, कोवाच, म्लेच्छ, चांडाल।।
आनो पापी नर कृष्ण सेवकर संगत पवित्र हय।
भकति लभिया संसार तरिया बैकुंठे सुखे चलय।।

नामघर में यह सभी लोग एक साथ बैठकर हरिस्मरण व कीर्तन करते थे। शंकरदेव द्वारा

स्थापित सत्रों के सरल व कर्मठ जीवन जीने वाले सत्राधिकारी सभी जाति वर्गों से आते थे।

लेखक एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य की ओर ध्यान दिलाते हैं वह यह कि अहोम ने असम को जीता था लेकिन विजेता के रुप में उन्होंने अपनी मान्यताएं, अन्य मताबलम्बी आक्रांताओं की तरह, अपनी प्रजा पर नही थोपीं बल्कि कालांतर में प्रजा के धर्म को ही अंगीकार कर लिया। शेष भारत के लिए यह भी आश्चर्य की बात है कि अहोमों ने हिन्दू धर्म तो स्वीकार कर लिया, पर वे किसी जाति के बंधन में ना बंधकर जाति से परे ही रहे। यही स्थिति कूच राजवंशियों की भी थी। वैसे भी असम में आदिवासियों की विशाल संख्या के कारण जातिप्रथा बहुत लचीली थी।

बोडो जनजाति के बारे में लेखक बताते हैं कि बोडो असम के बडे समतल भाग के आदिवासी हैं तथा असम की पूरी जनसंख्या का वे मात्र 6% हैं। लेखक ने बोडो आंदोलन के लोकतांत्रिक संघर्ष व सशस्त्र संघर्ष का भी वर्णन किया है। इस सशस्त्र संघर्ष में बोडो उग्रवादियों ने ब्रह्मपुत्र के उत्तरी किनारे पर बसी गैर-बोडो जनाजातियों का एक तरह से सफाया कर दिया। इस संघर्ष का कारण बोडो समुदाय में अपने संभावित उच्छेद का भय भी था।

सर एडवर्ड गेट, जो एक ब्रिटिश प्रशासक थे, की पुस्तक 'ए हिस्ट्री आफ आसाम' में की गयी भविष्यवाणी को उद्धृत कर लेखक बताते हैं कि "बोडो समुदाय का नष्ट होना बस समय की बात है"। इस डर का परिणाम था कि असम ट्राइबल लीग, बोडो सेक्योरिटी फोर्स, आल बोडोलैंड क्षात्र संगठन, बोडोलैंड क्षेत्रीय स्वायत्त परिषद, नेशनल डेमोक्रेटिक फ्रंट आफ बोडोलैंड, और बोडोलैंड पीपुल्स फ्रंट जैसे अनेक संगठन समय समय पर खडे हुए।

कालगति से बोडो सोच में आए परिवर्तन को भी डा. शैलेंद्र कुमार ने रेखांकित किया है। 1967 के लगभग बोडो साहित्य सभा ने जहां असमिया लिपि के स्थान पर रोमन लिपि अपनाने की मांग करते हुए व्यापक जनाआंदोलन चलाया, वहीं वर्तमान समझौते में प्रावधान रखा गया कि देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली बोडो भाषा को असम की दूसरी राजभाषा बनाने के लिए असम सरकार अधिसूचना जारी करेगी। इस प्रकार रोमन लिपि के प्रति मोह से लेकर भारतीय लिपि अपनाने तक की बोडो मनःस्थिति का प्रभावी वर्णन मिलता है।

नागा समस्या का जिक्र करते हुए वे संजय हजारिका को उद्धृत करते हुए बताते हैं कि कैसे साइमन कमीशन के क्लीमेंट एटली के समक्ष नागाओं ने याचना की थी कि उन्हें सीधे ब्रिटिश हुकूमत के अंदर ही रखा जाए। इसके साथ ही वे रानी गाइदिन्ल्यु की भी चर्चा करते हैं जिन्होंने ईसाइयत को नहीं मानकर एक हेराका आस्था पर यकीन करते हुए एक सम्प्रदाय की शुरुआत की। हेराका को हिन्दू धर्म और मूर्ति पूजा के साथ जोडा जाता रहा है। एक समय ब्रिटिश हुकूमत के अंदर रहने के इच्छुक नागा और भारत के बीच कभी के द्विपक्षीय मुद्दे आज भारत के अंदरुनी मामले बन चुके हैं।

इस पुस्तक का एक अन्य महत्वपूर्ण आकर्षण है अनियंत्रित मुस्लिम घुसपैठ व उससे असमियों विशेषकर जनजाति समुदाय के समक्ष आयी समस्या। मुस्लिम शासकों की कुंठित सोच दर्शाते हुए लेखक लिखते हैं कि 1908 में ढाका के नवाब ने कहा था कि असम के

पास बहुत जमीन है और इसे मुस्लिम प्रदेश हो जाना चाहिए। 1931 में असम के जनसंख्या अधीक्षक सी.एस.म्युलेन ने मुस्लिम घुसपैठ को देखते हुए कहा था कि "यदि घुसपैठ की यही रफ्तार रही तो शीघ्र ही शिवसागर जिले को छोडकर शेष असम हिन्दू बाहुल्य राज्य नहीं रह पाएगा। 1939 में मुस्लिम लीग के धुबरी अधिवेशन में एक प्रस्ताव द्वारा मुस्लिम घुसपैठियों को स्थानीय व्यक्तियों से असम की भूमि तथा संपत्ति जबरदस्ती छीनने के लिए प्रोत्साहित किया गया। शेख मुजीबुर्रहमान ने खुलकर कहा कि असम बांग्लादेश के विस्तार का स्वाभाविक स्थान है। अपनी पुस्तक East Pak- Its Population, Determination & Economics में मुजीबुर्रहमान लिखते है कि "चूंकि पूर्वी पाकिस्तान के पास इसकी विशाल जनसंख्या के अनुरूप पर्याप्त भूमि नहीं है, इसलिए असम और बिहार तथा बंगाल के समवर्ती जिले विस्तार के लिए आवश्यक होंगे ...... पूर्वी पाकिस्तान को वित्तीय और आर्थिक रूप से मजबूत होने के लिए अनिवार्यतः इन क्षेत्रों को शामिल करना होगा"। इन मुस्लिम घुसपैठियों की समस्या के कारण ही 1993 से 2014 के बीच कई बार बोडो-मुस्लिम दंगे हुए हैं।

स्वतंत्रता से पूर्व और स्वतंत्रता के बाद भी भारी मात्रा में मुस्लिम घुसपैठ होती रहीं। पूर्वी पाकिस्तान से आए इन घुसपैठियों के कारण असम की जनजातियों के कष्ट बढे। अप्रवासी अधिनियम जैसे कदम उठते दिखे पर वास्तव में कुछ नहीं हुआ, घुसपैठिए असम में जमे रहे। उलटे घुसपैठियों की वापसी रोकने के लिए कांग्रेस के मुस्लिम विधायकों ने अपनी ही पार्टी के मुख्यमंत्री के विरुद्ध इस आधार पर प्रदर्शन किया कि इससे कांग्रेस का वोट बैंक बिल्कुल समाप्त हो जाएगा। इसी प्रकार असम व आसपास के क्षेत्रों में ईसाइयत के असामान्य प्रसार को भी लेखक ने उठाया है। उत्तर-पूर्व में बीसवीं सदी के आरम्भ में ईसाई अबादी 1% से भी कम थी। आज वह हिन्दू आबादी से अधिक है और कुछ राज्य में तो बहुत अधिक है। इसी क्रम में लेखक ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा असम में वहां के सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए किए जा रहे कार्यों का भी उल्लेख किया है।

वेबिनार

आजादी का अमृत महोत्सव के अंतर्गत सभ्यता अध्ययन केंद्र द्वारा चलायी जा रही व्याख्यान श्रृंखला में अप्रेल उत्तरार्ध व मई माह में तीन ई-वक्तव्य आयोजित किए गए जिनका विवरण अग्रांकित है।

विषय: केरल का तालिबानीकरण
वक्ता: श्री जी. श्रीदत्तन – वरिष्ठ पत्रकार व लेखक
दिनांक: 20 अप्रेल, 2022

श्री जी. श्रीदत्तन जी ने अपने महत्वपूर्ण व ज्ञानवर्धक वक्तव्य में बताया कि केरल का तालिबानीकरण कोई कल्पना जनित या अतिरंजना युक्त कथन नहीं है बल्कि वह वास्तविक धरातल पर प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है। इस संबंध में उन्होंने निम्न तथ्यों की ओर ध्यान आकर्षित किया।

जनसांख्यिकीय परिवर्तन : उन्होंने बताया कि केरल में वर्तमान जनसंख्या हिन्दू 54%, मुसलमान 26.5%, तथा ईसाई 18.5% हैं। लेकिन जहाँ हिन्दू व ईसाई जनसंख्या का प्रतिशत घट रहा है वहीं मुसलमान जनसंख्या का प्रतिशत बढ रहा है। अनुमान है कि इस जनगणना में मुसलमान जनसंख्या 29% हो जाएगी। इस बढती जनसंख्या का कारण प्रजनन दर के साथ ही बाहर से, मुख्यतः बांगलादेश से, आकर बसे मुसलमान है जिनकी अपुष्ट किंतु अनुमानित वर्तमान संख्या 3 से 5 लाख है जिसका शीघ्र ही 16 लाख तक पहुंचने का अनुमान है।

बढती कट्टरता : बढती जनसंख्या के साथ ही बढती कट्टरता अतिरिक्त चिंता का विषय है। पापुलर फ्रंट आफ इंडिया और जमात-ए-इस्लामी जैसे कट्टर मुस्लिम संगठनों का प्रभाव केरल में बढा है। अनुमानतः लगभग 13 लाख लोग कट्टर बहावी विचारधारा के अनुयायी हैं। ये अनुयायी मुस्लिम ब्रदरहुड व पापुलर फ्रंट आफ फिलिस्तीन से प्रेरित हैं। अतिवादी साहित्य का प्रकाशन और सामान्य विद्यालयों में सांयकालीन इस्लामिक एजेंडा की कक्षाएं लगाने को बढावा मिला है। कसरगोड जैसे क्षेत्र में मुस्लिम एंक्लेव बन गए हैं जहां गैर-मुस्लिम का प्रवेश वर्जित है।

राजनीतिक संरक्षण : लगभग सभी राजनैतिक दल सभी प्रकार की मुस्लिम गतिविधि को संरक्षण देते हैं व तुष्टिकरण की नीति अपनाते हैं। सिमी पर प्रतिबंध के बाद इसका अधिकांश कैडर भिन्न भिन्न राजनीतिक दलों में समाहित कर लिया गया जहाँ वे निर्णय लेने की व निर्णयों को प्रभावित करने की स्थिति में हैं। उदाहरणार्थ एर्नाकुलम सीपीएम पूरी तरह मुस्लिम के अधीन है जहां सभी पदाधिकारी मुसलमान हैं। एक ओर सीपीएम नीत एलडीएफ अतिइस्लामवादी आईएनएल से जुडा है वहीं दूसरी ओर कांग्रेस नीत यूडीएफ मुस्लिम लीग के साथ है। आईएनएल की एसडीपीआई से सांठ-गांठ है। सीपीएम स्थानीय चुनाव एसडीपीआई के साथ लडती है, वस्तुतः एसडीपीआई के अनेक कार्यकर्ता सीपीएम प्रत्याशी की तरह चुनाव लडते हैं। इस सबका दुष्परिणाम यह है कि अनेक अनैतिक व अवैध गतिविधियों को अनदेखा किया जाता है। यहां तक कि हत्या जैसे अपराध में भी अपेक्षित तत्परता नहीं दिखती। कोई आश्चर्य नहीं कि केरल इन दिनों गोल्ड व ड्रग स्मगलिंग एवम नकली मुद्रा प्रसार का केंद्र बन गया है। इस तस्करी से प्राप्त आय को आतंकी गतिविधि में उपयोग किया जाता है।

सांस्कृतिक उच्छेद : विगत कुछ वर्षों से केरल की संस्कृति को प्रभावित करने व नष्ट करने के प्रयास हो रहे हैं। मुख्यमार्गों पर अनेक रेस्त्रां अब अरेबियन भोजन प्रदान करते हैं व उसे प्रचारित करते हैं। आईएसआईएस जैसे संगठनों का काला रंग इन रेस्त्रां की पहली पसंद बना हुआ है। पर्दा को प्रोत्साहन, हलाल खाद्य पदार्थ, इस्लामिक बैंकिंग आदि के प्रयोग तथा लव जिहाद व दुसरे इस्लामी एजेंडे के चलचित्र को प्रोत्साहन इसी ओर संकेत करता है।

अंत में वक्ता ने अपनी चिंता व्यक्त की कि यदि शासन व समाज इस ओर शीघ्र ध्यान नही देता तो केरल का तालीबानीकरण निश्चित है।

विषय: ताजमहल का इतिहास
वक्ता: श्री रुद्र विक्रम सिंह, अधिवक्ता सर्वोच्च न्यायालय
दिनांक: 18 मई, 2022

श्री रुद्र विक्रम सिंह जी अधिवक्ता होने के साथ ही निष्ठावान व सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ता भी हैं। ताजमहल के बंद पडे कमरे खुलवाने सबंधी माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत याचिका में वे स्वयं याचिकाकर्ता भी रहे हैं अतः उनका वक्तव्य विशेष महत्व रखता है।

वे बताते हैं कि ताजमहल लगभग 65 मीटर जमीन के नीचे है जिसमें अनेक कमरे हैं और उसमें से कई कमरे बहुत बेढंगे तरीके से दीवार आदि से बंद किए गए हैं। ताजमहल के इतिहास पर उनका मानना है कि हमें जो इतिहास पढाया गया है वह विकृतिपूर्ण है। हमने गलत इतिहास पढा लेकिन यह हम सब का दायित्व है कि हमारे बच्चों को गलत इतिहास न पढना पढे। ताजमहल के बारे में उन्होंने बताया कि आरम्भ में राजा परमार्दिदेव द्वारा इसका कुछ निर्माण किया गया था बाद में राजा मानसिंह ने इसे बनवाया। शाहजहां ने इसे राजा जयसिंह से लिया था। इसे शाह्जहां द्वारा खरीदने का वर्णन भी मिलता है पर इसे संभवता

बिना मूल्य चुकाए छीना गया था। ताजमहल शाहजहां द्वारा निर्मित नहीं हो सकता इस सबंध में वक्ता ने निम्न बिंदुओं की ओर ध्यान आकर्षित किया :-

1. पुरे विश्व में ऐसी कोई इमारत नहीं है जो मुस्लिम ने बनवायी हो और उसका नाम महल रखा गया हो। ताजमहल एक अपवाद है।
2. स्मृत्यार्थ बनवाए गए भवनों में प्रायः मृत्यु तिथि का अंकन रहता है। ताजमहल में ऐसा नहीं है। वास्तव में जिस अतिशय प्रिय बेगम मुमताज महल की याद में इतने बडे भवन के निर्माण की बात की जाती है उस की मृत्यु की तिथि को छोडिए, उसकी मृत्यु के ठीक वर्ष का भी पता नहीं है। मुमताज महल की मृत्यु 1629, 1630, 1631, या 1632 में हुई बताते हैं।
3. ऐसा बताया जाता है कि भव्य ताजमहल 1632 से 1653 के बीच 22 वर्षों में बनकर तैयार हुआ। यह आश्चर्यजनक है कि 1653 में पूरी हुई इस इमारत का क्षतिग्रस्त होने के कारण 1651 में ही औरंगजेब द्वारा अपने साधनों से मकबरे की मरम्मत कराने का वर्णन आदाब-ए-आलमगीरी में है।
4. शाहजहां के काल का वर्णन करने वाली 'बादशाहनामा' शाहजहां द्वारा राजा जयसिंह से एक महल खरीदने की बात करती है।
5. फ्रांसीसी यात्री डेविल नायर अपने यात्रा वृत्तांत में लिखता है कि शाहजहां ने बुरहानपुर में एक मकबरा बनवाया पर उसे इस तरह प्रचारित करवाया जैसे वह ताजमहल हो।
6. 1631-32 में एक अन्य यात्री पीटर मुंडी ताजमहल जैसा वृत्तांत देते हुए लिखते हैं कि ऐसा भवन वहां पर विद्यमान था। एक डच यात्री, डार्लेट, भी ऐसा ही विवरण देते हुए भवन का वहां होना लिखते हैं।
7. 1631-1638 के बीच आगरा में रहे अलब्रेट अपनी पुस्तक 'लाइफ इन आगरा' में ऐसे किसी भव्य भवन के निर्माण के बारे में नहीं बताते यद्यपि वे तेजोमहालय की बात करते हैं।
8. 6 जून 1984 को छपी श्री टी. विलियम द्वारा की गयी ताजमहल की कार्बन डेटिंग संबंधी रिपोर्ट के अनुसार ताजमहल की आयु करीब 600-650 वर्ष आंकी गयी। अर्थात यह भवन लगभग 1200-1300 ई. का माना गया।

कमरे खुलवाने की उपरोक्त याचिका में माननीय न्यायालय से यथेच्छ आदेश नहीं मिल सका है पर न्याय पाने के लिए यथोचित संघर्ष चलता रहेगा।

विषय: संन्यासी आंदोलन तथा काशी का संघर्ष
वक्ता: डा. आनंद वर्द्धन, प्रसिद्ध इतिहासकार व लेखक
दिनांक: 25 मई, 2022

'संन्यासी आंदोलन तथा काशी का संघर्ष' विषय पर अपने वक्तव्य के माध्यम से डा.आनंद वर्द्धन ने इतिहास के बहुचर्चित मार्ग से आगे बढकर अल्पचर्चित किंतु रोमांचकारी वीथियों की लोमहर्षक यात्रा करवाई। अपरिचित गलियों में ले जाने से पहले उन्होंने अपने

वक्तव्य के आधारभूत स्रोतों से और उनके महत्व से परिचय करवाया।

प्लासी और बक्सर के युद्ध अतिशय महत्व के होने की प्रचलित धारणा से हटकर उन्होंने बताया कि ये युद्ध सब कुछ नहीं थे, इनसे हम सब कुछ नहीं हार गए थे। इन एक दिन या मात्र कुछ धंटों की लडाई से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है इसके तुरंत बाद आरम्भ होकर लगभग 30 वर्ष तक लगातार चलने वाला काशी, बिहार, बंगाल क्षेत्र के राजाओं व जमींदारों का संघर्ष। ये कोई गोरिल्ला या छापामार जैसी लडाई नहीं थी बल्कि आमने-सामने के भीषण संघर्ष थे जिसमें अंग्रेजों की अनेक बार पराजय हुई। बक्सर के युद्ध के बारे में उन्होंने बताया कि बक्सर की लडाई वास्तव में गया जिले के दाऊदनगर में होनी थीं जहां सेनाएं एकत्र भी हो गयीं थीं। काशीराज ने दूरदर्शिता दिखाते हुए सुझाव रखा की लडाई टिकारी के राजा के जमीन पर न हो, बक्सर में हो। साथ ही मीर कासिम और अंग्रेजों की चाल समझते हुए – दोनों काशी हथियाना चाहते थे - स्वयं को व अन्य हिन्दू राजाओं को इस युद्ध से अलग कर लिया। उनका कहना था यह युद्ध मीर कासिम व अंग्रेजों के बीच है, इससे हिन्दू राजाओं को क्या मिलेगा। यहां मूर्धन्य वक्ता ने मीर जाफर संबंधी गद्दारी की प्रचलित मान्यता से हटकर बताया कि मीर जाफर तो निकृष्ट था ही लेकिन मीर कासिम उससे भी बडा जाहिल था, उसने अंग्रेजों के हित में देशी शक्तियों को अत्यधिक क्षीण किया। कासिम ने ही टिकारी के राजकुमारों की हत्या करवाई तथा उसने दो-तीन बार अंग्रेजी सहयोग से सेनाएं चंपारण व सारण के क्षेत्र में भेजी व अंग्रेजी तोपखाने के संरक्षण में युद्ध किया जबकि इन क्षेत्रों की सेना व जनता अंग्रेज के विरुद्ध लड रही थी। काशीराज की उपरोक्त दूरदर्शिता से काशी व टिकारी (दोनों हिन्दू राज्य) की सेनाएं आमने सामने निरर्थक युद्ध करने से बच गयीं।

1767 में फतेह बहादुर सिंह ने सारण में युद्ध की घोषणा कर दी, भयंकर युद्ध हुआ। जगह जगह विद्रोह हो रहे थे अंग्रेजों को अतिरिक्त सेना व हथियार अन्य स्थानों से मंगवाने पडे। 5000 नागा जोशीमठ, जयपुर, झांसी, मिर्जापुर, मराठवाडा जैसे क्षेत्रों से आकर फतेहबहादुर की सेना में शामिल हो गए। डा. आनंद वर्धन ने बताया कि कूचबिहार राज्य (बंगाल में) में भी कम्पनी हस्तक्षेप कर रही थी। रामानंद गोस्वामी के नेतृत्व में सन्यासियों का एक दल कूचबिहार का साथ दे रहा था। मिर्जापुर भी नागाओं का गढ रहा है जहां गिरि सन्यासियों की व्यापारिक व बैंकिंग व्यवस्था में गहरी पैठ थी।

एक अन्य महत्वपूर्ण जानकारी उहोंने सैमुअल चार्टर रिपोर्ट (भारत की पहली सैनिक जांच कमेटी) के बारे में दी। उपद्रव क्यों नही थम रहे इस विषय पर सैमुअल चार्टर रिपोर्ट में कहा गया था कि चम्पारण व सारण के राजा ब्राह्मण हैं और उनसे जनता का बडा प्रेम है। नोनिया, लोहार, चर्मकार आदि सभी राजा के साथ हैं जिनका यह दृढ विश्वास है कि राजा मेरा है; राजा हितकारी है; राजा अपराजेय है वह युद्ध जीतेगा। रिपोर्ट कहती है कि जबतक यह जातिगत गठजोड बना रहेगा और जनता का विश्वास नहीं टूटेगा तबतक विद्रोह जारी रहेगा। 1830 के कलकत्ता रिव्यु को उद्धृत कर उन्होंने बताया अंग्रेज अपने लिए सबसे बडा खतरा फतेह बहादुर शाही को मानते थे ना कि मुगल या मराठा को। वारेन हेस्टिंग्स को सपने में भी

काशी के राजा चेत सिंह का भूत दिखता था। वारेन हेस्टिंग्स को बनारस से बुरखा पहनकर जान बचाकर भागना पडा था।

आनंद वर्द्धन जी ने अनेक महत्वपूर्ण पर अल्पज्ञात संघर्षों का उल्लेख किया जिनमें प्रमुख हैं फतेहबहादुर व अंग्रेजों के बीच हुई लाईन बाजार की लडाई, सारण में मंजूरा का युद्ध जिसमें फतेहबहादुर की ओर से 20000 सैनिक थे, तितरिया घाट पर बेंचू सिंह व क्राफर्ड की लडाई, शिवाला की लडाई, सुकृत दर्रे एवम लतीफगढ किले की लडाई। हिन्दू सन्यासियों व हिन्दू जमींदारों को परेशान करने वाले मुस्लिम मदार फकीरों के मुरुंग कैम्प पर मोती सिंह सन्यासी द्वारा किए गए हमले का भी उन्होंने उल्लेख किया। अपने वक्तव्य के माध्यम से जिन वीर, पराक्रमी योद्धाओं के प्रति डा. आनंद वर्द्धन ने सुधी श्रोताओं के साथ श्रद्धांजलि दी उनमें प्रमुख नाम हैं –

राजा चेत सिंह के भतीजे मनियार सिंह, चम्पारण के राजा युगल किशोर सिंह, पिताम्बर शुक्ल, पवई के जमींदार नारायण सिंह, गजराज सिंह, बाबू राम जियावन सिंह, पं बाल कृष्ण हजारी, भवानी पाठक, चंदन गिरी, डामर गिरी, अजीत गिरी, अछोहानंद, भावानंद, पडरौना के धेनुराय, जालिम सिंह, और मझौली के अजीत मल आदि।

भारत में मूल निवासी होने का आशय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ

✍ प्रोफेसर टी.सी. जेम्स

?????????

सार जैविक संसाधनों के सतत विकास में जनजातीय लोगों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह चर्चा विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर जैविक संसाधनों और पारम्परिक ज्ञान के साथ-साथ जनजातीय अधिकारों तक पहुंच और लाभ साझाकरण से सम्बन्धित मुद्दों पर भारत के रुख के लिए आधारभूत रही है। लेकिन जब इनसे जुड़े बाहरी मुद्दों को उठाया जाता है, तो भारत को बहुत सतर्क रुख अपनाना चाहिये। मूलनिवासियों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र घोषणा 2007 पर भारत की आपत्तियों और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के मूलनिवासी और जनजातीय जनसंख्या सम्मेलन, 1989 का अनुमोदन न करने के कारण अकादमिक और नीतिगत हलकों में काफी चर्चा हुई है। यह प्रपत्र अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों में मूलनिवासी' शब्द के उपयोग की जाच करता है और अन्तर्राष्ट्रीय और घरेलू दोनों चर्चाओं में भारत की सोच पर प्रकाश डालता है। यह भारत के जनगणना दस्तावेजों, संविधान सभा की बहस और अन्य आधिकारिक अभिलेखों के माध्यम से इस शब्द के इतिहास को खोजने का प्रयत्न करता है। भारत में अनुसूचित जनजातियों के विकास के पहलुओं को भी संक्षेप में इस प्रपत्र में शामिल किया गया है।

मुख्य शब्द मूल निवासी, संविधान, अधिकार, अनुसूचित जनजाति, पारम्परिक ज्ञान।

परिचय

मूलनिवासियों के मामलों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कार्य समूह (आई डबल्यू जी. आई.ए.) के वेबसाइट पर अपनी टिप्पणी में कहा है:

"भारत ने मूलनिवासी लोगों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र घोषणा के पक्ष में इस शर्त पर मतदान किया कि स्वतन्त्रता के बाद सभी भारतीय मूलनिवासी

इस विषय पर भारत की सोच पर कतिपय हल्कों से चर्चा सुनने को मिली है। हाशिए पर पड़े लोगों के अधिकारों पर जताई गई भारत की आलोचना, भारत के रुख की पृष्ठभूमि की अपर्याप्त समझ पर आधारित है। यह प्रपत्र 'विजिटिंग फैलो, आर.आई. एस. यह प्रपत्र आरआईएस के महानिदेशक प्रोफेसर सचिन चतुर्वेदी की पहल के बिना समय नहीं होता। उनके साथ चर्चा और शुरुआती मसीदे पर उनकी टिप्पणियों से इसे बहुत फायदा हुआ है। कई

अन्य लोगों के साथ विचार-विमर्श से भी इस प्रपत्र और चर्चा को अत्यधिक लाभ प्राप्त हुआ है, जिनमें प्रमुख है श्री हर्ष चौहान, अध्यक्ष राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग, जिन्होंने इस विषय पर विस्तृत चर्चा की और कई नई जानकारिया प्रदान की। लेखक उन सभी का आभारी है। विचार व्यक्तिगत है। भारत द्वारा दी गई सावधानी बरतने के बृहत्तर सन्दर्भ का पता लगाने की प्रस्तुति करता है।

भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इन विषयों और मुद्दों से सम्बन्धित जैविक विविधता, पारम्परिक ज्ञान, पारम्परिक चिकित्सा प्रणालियों और बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के सम्बन्धों के संरक्षण से जुड़े मुद्दों पर हमेशा सक्रिय और सकारात्मक भूमिका निभाई है। देश ने इनमें शामिल लोगों और समुदायों के अधिकारों की रक्षा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कानूनी उपकरणों के प्रारूपण में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारत उन कुछ देशों में से एक है जिन्होंने जैविक विविधता पर कन्वेंशन के लागू होने से पहले ही आनुवंशिक संसाधनों और सम्बद्ध पारम्परिक ज्ञान के लिए स्वदेशीय पहुंच और लाभ - साझाकरण तन्त्र विकसित किया था और पूर्व-सूचित सहमति के लिए जोर दिया था (चतुर्वेदीरू 2007)। विकासशील देशों की अनुसन्धान और सूचना प्रणाली (आर.आई.एस.) जैसी संस्थाओं सहित भारतीय शिक्षाविद भी जैविक संसाध नों और पारम्परिक ज्ञान के संरक्षण व सुरक्षा और पारम्परिक ज्ञानधारकों के अधिकारों की सुरक्षा से सम्बन्धित अध्ययनों में काफी सक्रिय थे। भारत मानवाधिकारों पर वैश्विक घोषणा (1957) का भी एक हस्ताक्षरकर्ता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इन मुद्दों पर भारतीय रुख हमेशा अपनी संस्कृति और लोकाचार पर आधारित रहा है और विकासशील देशों के हितों के लिए सूक्ष्म-सन्दर्भित होता रहा है।

मानवाधिकारों पर चर्चाओं ने अलग-अलग स्थिति वाले लोगों को सन्दर्भित करने के लिए उपयुक्त शर्तो पर प्रश्न उठाए हैं, चाहे वह ऐतिहासिक, सामाजिक या आर्थिक रूप से हो। ऐसा ही एक शब्द 'मूलनिवासी' है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने पहली बार आधिकारिक तौर पर इस शब्द का इस्तेमाल सतत विकास पर विश्व शिखर सम्मेलन, 2002 की अपनी राजनीतिक घोषणा में किया था, हालांकि 'मूलनिवासी' लोगों पर 1982 में ही संयुक्त राष्ट्र कार्य के एक कार्यशील गुट की स्थापना की गई थी। पीटर्स और मीका (2017) के अनुसार, इससे पहले, इस शब्द को संयुक्त राष्ट्र के आधिकारिक दस्तावेजों में उपयोग के लिए "अभी भी बहस के तहत माना जाता था। उपरोक्त शिखर दस्तावेजों में, जैसा कि संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रकाशित किया गया है, यह शब्द 173 बार प्रकट होता है, हालांकि ये सभी शब्द 'लोग' को परिभाषित नहीं करते हैं। 'मूलनिवासी लोग' शब्द से 'मूलनिवासी' की मौखिक अभिव्यक्ति वाले अर्थ से भिन्न कई अर्थों की उत्पत्ति होती है। इस शब्द का शब्दकोशीय अर्थ किसी विशेष स्थान पर स्वाभाविक रूप से उत्पन्न या घटित होना है: "मूल' शब्द और इसकी उत्पत्ति 17वीं शताब्दी के मध्य में पाई जाती है। व्युत्पत्ति के अनुसार यह लैटिन शब्द इण्डिजीन से लिया गया है जिसका अर्थ है भीतर पैदा हुआ (पिल्लई, 2014)। सम्बन्धित शब्द इण्डिजीन' 16वीं शताब्दी के अन्तिम हिस्से में पाया जाता है। सर थॉमस ब्राउन ने 1646 में प्रकाशित अपनी

पुस्तक, स्यूडोडॉक्सिया एपिडेमिका में अमेरिका के मूल निवासियों के सन्दर्भ में इसका इस्तेमाल इस वाक्य में किया था, "हालांकि इसके कई हिस्सों में वर्तमान में स्पेन के अधीन सेवा करने वाले नीग्रो के झुण्ड हों, फिर भी वे सभी कोलम्बस की खोज के बाद से अफ्रीका से लाए गए थे और अमेरिका के स्वदेशीय या उचित मूलनिवासी नहीं हैं" (इस शब्द पर जोर दिया गया है)।

ऐसा लगता है कि यह शब्द व्यापक अकादमिक चर्चाओं में शामिल हो गया है। 20वीं सदी की शुरुआत में विशेष रूप से मैक्सिकन क्रान्ति (1910-1920) के बाद इसका प्रचलन बढ़ा। इसने उन लोगों के बारे में औपनिवेशिक धारणाओं में बदलाव की शुरुआत की, जिन्हें उपनिवेशवादियों ने अपने अधीन कर लिया था और जिनकी भूमि पर उन्होंने बड़े पैमाने पर पलायन करवाने के साथ ज्यादातर सशस्त्र और हिंसक कब्जा कर लिया था। यह दोनों उत्तर और दक्षिण अमेरिका में, ऑस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्ड हुआ था, जहां मूल आबादी पूरी तरह से हाशिये पर धकेल दी गई थी। वहां के मूल लोगों को कुछ खास बाड़ों में जैसे उत्तर के देशों में, और दक्षिण के देशों में किसी भी राजनीतिक या आर्थिक शक्ति से प्रभावी ढंग से बाहर रखा गया था, हालांकि मेस्टिजों की एक बड़ी संख्या थी। ये वे क्षेत्र थे जहां 'इतिहास' केवल औपनिवेशिक शक्तियों का था।

20वीं शताब्दी की शुरुआत में, विद्वानों ने इस विचार को व्यक्त करना शुरू कर दिया, भले ही देर से, कि यूरोपीय लोगों के आगमन से पहले अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया-न्यूज़ीलैण्ड में लोग रह रहे थे और उनकी अपनी संस्कृति और पाद्धतियां थी। उन क्षेत्रों के पहले के निवासी मूलनिवासी लोग थे (बेटीलः 1998)। इतिहास का यह सम्पूर्ण सफाया भारत और अन्य एशियाई देशों जैसे इण्डोनीशिया, श्रीलंका आदि में इतने बड़े पैमाने पर नहीं हुआ, जो उपनिवेशवाद के अधीन रहे। लोगों का मूल रंग नहीं बदला, जैसा कि संयुक्त राष्ट्र संघ में इण्डोनीशिया के प्रतिनिधि द्वारा व्यक्त किया गया था कि "औपनिवेशीकरण के समय इण्डोनीशिया की पूरी आबादी अपरिवर्तित रही कोई सामूहिक नरसंहार या बड़े पैमाने पर आप्रवासन नहीं हुआ, जिसने वहां के मूल निवासियों को अल्पसंख्यक बना दिया। नतीजतन, जनसंख्या का मूल और गैर-मूल में कोई विभाजन नहीं हुआ। तथापि, जैसा कि अक्सर अन्तरराष्ट्रीय चर्चाओं में होता है, औद्योगिक पश्चिमी जगत द्वारा उपयोग की जाने वाली शब्दावली को एशियाई और अफ्रीकी देशों के इतिहास पर भी मढ़ा गया है। ऐसी चर्चाओं में पश्चिम द्वारा इस तथ्य को उपेक्षित कर दिया गया कि भारत जैसे देशों में सत्ता अन्ततः मूल निवासियों को हस्तान्तरित कर दी गई थी, क्योंकि अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया में वहां आकार बसने वालों की संख्या मूल निवासियों से कहीं अधिक थी। इन नए बसने वाले लोगों ने राजनीतिक शक्ति अपने पूर्व औपनिवेशिक स्वामियों से प्राप्त कर ली थी। वैसे सतही तौर पर यह यूरोपीय हाथों से स्थानीय लोगों में सत्ता का हस्तान्तरण था, लेकिन वास्तव में ये स्थानीय लोग उसी जाति के थे जिसने यूरोप से आकर उस भूमि का उपनिवेशीकरण किया था। यह राजनीतिक सत्ता उन लोगों के साथ साझा नहीं की गई जो औपनिवेशिक लोगों

से पहले उन भौगोलिक क्षेत्रों में रहते आए थे। दक्षिण अफ्रीका जैसे कुछ अफ्रीकी देशों में जहां उपनिवेशवासी भी बस गए थे, वहां मूल निवासियों को अधीनता में रखा गया, लेकिन उनका उस तरह सामूहिक उन्मूलन नहीं किया गया जैसा कि उत्तरी अमेरिका में देखा गया। दक्षिण अफ्रीका के मामले में अंग्रेजों ने 1934 के बाद से स्थानीय गोरे लोगों द्वारा स्वशासन की अनुमति दी। उन स्थानीय गोरों ने रंगभेद की नीति का अनुसरण किया, और उस देश के अश्वेत अफ्रीकियों (जो वहां के मूल निवासी हैं), जिनकी आबादी देश का 80% प्रतिशत हिस्सा था, को अपने राजनीतिक अधिकारों व शक्ति की प्राप्ति के लिए एक लम्बी लड़ाई लड़नी पड़ी, जो अन्ततः उन्हें 1994 में ही प्राप्त हुई। स्पष्ट रूप से जो बात सामने आती है, वह यह है कि स्वदेशीय समस्या मूल रूप से राजनीतिक शक्ति से सम्बन्धित है; एक वास्तविक समस्या केवल वहीं पर है जहां सत्ता वास्तव में उन लोगों के साथ साझा नहीं की गई थी जो औपनिवेशिक अतिक्रमण के समय उन-उन भूमियों के निवासी थे।

भारत जैसे देशों में विषय अलग है। इसलिए, मूल और बाहर से आकर बसनेवाले लोगों का विभाजन भारत जैसे संदर्भ में मान्य नहीं हैं। देश के जनजातीय लोगों को 'मूल निवासी के रूप में इंगित करना यह सुझाव देता है कि देश के अन्य लोग गैर-मूल निवासी या विदेशी हैं। भारत जैसे देश के विषय में यह बात उपयुक्त नहीं हैं। अतः संयुक्त राष्ट्र संघ में चर्चाओं के दौरान काफी पहले से भारत ने यह विचार प्रतिपादित किया कि इस देश के सभी लोग यहां के मूल निवासी ही हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ और अन्य अन्तर्राष्ट्रीय मंचों में भारत 13 सितंबर 2007 को आयोजित संयुक्त राष्ट्र संघ की 107वीं पूर्ण बैठक में एक प्रस्तावना" के माध्यम से मूल निवासी लोगों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र घोषणापत्र को अपनाया गया। यह एक गैर-बाध्यकारी प्रस्तावना है। जहां 143 देशों ने इसके पक्ष में मतदान किया और 4 (संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड) ने इसके विरोध में, वहीं 11 देश मतदान से अनुपस्थित रहे। भारत के पड़ोसी, बांग्लादेश और भूटान मतदान से अनुपस्थित देशों में थे।

यद्यपि भारत ने प्रस्ताव के पक्ष में मतदान किया, संयुक्त राष्ट्र में भारत के प्रतिनिधि श्री अजय मल्होत्रा ने भारत में सभी मूल निवासी लोग कौन हैं, इस पर भारत की स्थिति पर एक अर्हक वक्तव्य देते हुए कहा- जहां घोषणा में यह परिभाषित नहीं किया गया था कि मूलनिवासियों की बनावट क्या है लोगों, मूलनिवासी अधिकारों का विषय स्वतन्त्र देशों में लोगों से सम्बन्धित है, जिन्हें देश में रहने वाली आबादी से उनकी वंशजता के कारण, अथवा एक भौगोलिक क्षेत्र विशेष जो उस देश पर विजय या उपनिवेश की स्थापना, या वर्तमान राज्य की सीमाओं की स्थापना के समय उस देश का था, जो उस देश में निवास करते आए हैं. और जिन्होंने अपनी कानूनी स्थिति के बावजूद, अपने कतिपय या सभी सामाजिक आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक संस्थानों को बनाए रखा और इसलिए उन्हें स्वदेशीय माना जाता है। भारत इस प्रस्तावना में आत्मनिर्णय से सम्बन्धित धारा में भी संलग्न था।

उस मुद्दे पर भारत के प्रतिनिधि ने कहा: आत्मनिर्णय के अधिकार के सन्दर्भ में, उनकी

यह समझ थी कि आत्मनिर्णय का अधिकार केवल विदेशी प्रभुत्व के तहत लोगों पर लागू होता है और यह अवधारणा सम्प्रभु स्वतन्त्र राज्यों या लोगों के एक वर्ग या राष्ट्र पर लागू नहीं होती है, जो राष्ट्रीय अखण्डता का सार है। घोषणा में स्पष्ट किया गया है कि मूलनिवासियों द्वारा अपने आन्तरिक और स्थानीय मामलों से सम्बन्धित मामलों में स्वायत्तता या स्वशासन के अधिकार के साथ-साथ उनके स्वायत्त कार्यों के वित्तपोषण के साधनों और तरीकों के सन्दर्भ में आत्मनिर्णय के अधिकार का प्रयोग किया जाएगा। इसके अलावा, धारा 46 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि घोषणा में कुछ भी किसी भी राज्य, लोगों, समूह या व्यक्ति के लिए किसी भी गतिविधि में शामिल होने या घोषणापत्र के विपरीत कोई कार्य करने के अधिकार के रूप में व्याख्या नहीं की जा सकती है। इसी आधार पर भारत ने घोषणापत्र को अपनाने के पक्ष में मतदान किया था।

'मूलनिवासी' शब्द का प्रयोग 1957 में पहली बार किसी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के विचार-विमर्श और उपकरणों में, मूलनिवासियों के संरक्षण और एकीकरण से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई.एल.ओ.) द्वारा आयोजित स्वतन्त्र देशों में अन्य जनजातीय और अर्ध-जनजातीय जनसंख्या (सम्मेलन क्रमांक 107) सम्मेलन में हुई चर्चा में किया गया था (क्साक्सा: 3590)। तथापि, ऐसा प्रतीत होता है कि भारत ने उस समय मूलनिवासी शब्द पर कोई आपत्ति नहीं जताई या कोई चेतावनी नहीं दी क्योंकि इस शब्द को अधिकारों और सशक्तिकरण जैसे मुद्दों को नहीं जोड़ा गया था। तब मूलनिवासी और जनजातीय लोगों को बृहत्तर सामाजिक व्यवस्था में एकीकृत करने पर ध्यान केन्द्रित किया गया था। लेकिन जब केन्द्र के मुद्दे बदल गए तो भारत ने भारतीय सन्दर्भ में इस शब्द की प्रासंगिकता के स्पष्टीकरण की आवश्यकता महसूस की (क्साक्सा: 3591)। भारत ने अभी तक 1989 सम्मेलन की पुष्टि नहीं की है और 1957 के सम्मेलन के साथ बना हुआ है, जिसकी उसने 29 सितम्बर 1958 को पुष्टि की थी। वास्तव में एशिया से केवल नेपाल ने और अफ्रीका से केवल मध्य अफ्रीकी गणराज्य ने 1989 के इस सम्मेलन की पुष्टि की। विचार-विमर्श के दौरान, भारतीय प्रतिनिधि ने दोहराया कि "भारत में जनजातीय लोगों की तुलना उनकी समस्याओं, हितों और अधिकारों के मामले में कुछ अन्य देशों की मूलनिवासियों की जनसंख्या से नहीं की जा सकती थी। इस कारण से, इसमें शामिल कुछ जटिल और संवेदनशील मुद्दों पर अन्तर्राष्ट्रीय मानक स्थापित करने का प्रयास प्रतिकूल परिणामों वाला साबित हो सकता है।"

अन्य एशियाई देशों जैसे चीन, बांग्लादेश, म्यांमार और इण्डोनीशिया ने भी इस शब्द के वैचारिक दृष्टिकोण के कारण मूल शब्द पर आपत्ति जताई। उनका सामान्य दृष्टिकोण यह था कि मूलनिवासी' की अवधारणा यूरोपीय औपनिवेशिक समझौते के सामान्य अनुभव का एक उत्पाद है, जो एशिया के उन हिस्सों के लिए मौलिक रूप से अनुपयुक्त है, जिन्होंने प्रचुर यूरोपीय उपनिवेशों के बसाए जाने का अनुभव नहीं किया।" इस दृष्टि से या तो सभी लोग उनके देशों में मूलनिवासी हैं या कोई मूलनिवासी नहीं हैं. जैसा कि सम्मेलन में किया गया है। अफ्रीकी देशों ने यह विचार अपनाया कि सभी अफ्रीकी लोगों को तकनीकी रूप

से मूलनिवासी माना जाए क्योंकि वे उस आबादी के वंशज हैं जो यूरोपीय उपनिवेशों की स्थापना से पहले उस महाद्वीप में रहते थे"। उनकी राय में, इस तरह के शब्दों का प्रयोग उन लोगों को अलग-थलग करने के लिए, जो इस महाद्वीप में सहस्राब्दियों से रह रहे थे, कलह पैदा करेगा और नव-स्वतन्त्र देशों के एकीकरण के रास्ते में बाधा उत्पन्न करेगा।

संयुक्त राष्ट्र संघ और अन्य अन्तर्राष्ट्रीय निकायों में 'मूलनिवासियों की परिभाषा

ऐसे कई अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन और समझौते हैं" जो मूलनिवासियों के अधिकारों और विकास के मुद्दों से व्यवहार करते हैं लेकिन अभिव्यक्ति की एक वैश्विक रूप से स्वीकार्य परिभाषा अभी भी कायम नहीं हुई है। संयुक्त राष्ट्र संघ के आर्थिक और सामाजिक मामलों का विभाग अपनी वेबसाइट पर मूलनिवासियों को 'अद्वितीय संस्कृतियों के उत्तराधिकारी और व्यवसायी और लोगों और पर्यावरण से सम्बन्धित तरीकों के रूप में वर्णित करता है और यह कहा जाता है कि उन्होंने "उन सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक विशेषताओं को बरकरार रखा है जो कि उन प्रभावी समाजों से अलग है जिनमें वे रहते हैं।" लेकिन इसे स्वदेशीय या मूलनिवासी लोगों की औपचारिक परिभाषा के रूप में नहीं माना जा सकता है। इसके अलावा ऐतिहासिक दृष्टिकोण से, इसमें विशिष्टता का अभाव है, यह किसी भी समुदाय पर लागू हो सकता है जिसकी एक विशिष्ट संस्कृति या सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विशेषता है।

2007 के संयुक्त राष्ट्र के प्रस्ताव संख्या 61/295 में मूलनिवासियों की कोई परिभाषा नहीं थी, लेकिन एक रिपोर्ट में (मूलनिवासियों की आबादी के खिलाफ भेदभाव की समस्या पर भेदभाव की रोकथाम व अल्पसंख्यकों के संरक्षण पर संयुक्त राष्ट्र उपायोग, 1981, के विशेष प्रतिवेदक जोस आर. मार्टिनेज कोबो द्वारा अध्ययन) जो संयुक्त राष्ट्र संघ की चर्चाओं का आधार बना था, मूलनिवासियों की अवधारणा को निम्नलिखित रूप से समझाया गयाः मूलनिवासी समुदाय, लोग और राष्ट्र वे हैं जो आक्रमणों से पूर्व और उपनिवेशों की स्थापना से पूर्व के समाजों के साथ एक ऐतिहासिक निरन्तरता रखते हुए अपने क्षेत्रों में विकसित हुए और खुद को उन क्षेत्रों या उनके कुछ हिस्सों पर वर्तमान में प्रभावी समाज के इतर घटकों से अलग मानते हैं। वे वर्तमान में समाज के गैर-प्रभावी घटकों के रूप में विद्यमान हैं और अपने स्वयं की सांस्कृतिक परिपाटियों, सामाजिक संस्थाओं और कानूनी प्रणालियों के अनुसार, लोगों के रूप में अपने निरन्तर अस्तित्व के आधार के रूप में, अपने पूर्वजों के क्षेत्रों और उनकी जातीय पहचान को संरक्षित करने, विकसित करने और भावी पीढ़ियों तक प्रसारित करने के लिए दृढ संकल्पित है।

रिपोर्ट में बताया गया है कि किन कारकों पर ऐतिहासिक निरन्तरता का निर्धारण विचार किया जाना चाहिए। ये हैं: "पैतृक भूमियों, या उनमें से कम से कम एक हिस्सा पर कब्जा • इन भूमियों के मूल निवासियों के साथ सामान्य वांशिकता।

सामान्य रूप से संस्कृति, या उसकी विशिष्ट अभिव्यक्तियों में (जैसे धर्म, एक जनजातीय व्यवस्था के तहत रहना, एक मूलनिवासी समुदाय की सदस्यता, परिधान, आजीविका के

साधन, जीवन शैली, आदि) • भाषा (चाहे केवल भाषा के रूप में, मातृभाषा के रूप में, घर पर या परिवार में संवाद के अभ्यस्त साधन के रूप में, या मुख्य, पसन्दीदा आदतन, आम या सामान्य भाषा के रूप में)

• देश के कुछ हिस्सों में या विश्व के कुछ क्षेत्रों में निवास • अन्य प्रासंगिक कारक

क्षेत्र-विशेष में उपनिवेशों के कायम होने से पूर्व निरन्तर अस्तित्व के अलावा, यह दो महत्वपूर्ण अतिरिक्त कारक भी लाता हैय यथा, समाज में गैर-प्रभुत्व और विशिष्टता। ये तत्व उन लोगों को मूलनिवासियों के दायरे में शामिल करना सम्भव बनाते हैं जिनके साथ पक्षपात होता है या राजनीतिक सत्ता से वे वंचित हैं। ये घटक मानव अधिकारों के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण और आवश्यक हैं, लेकिन शायद अन्य स्थितियों में नहीं। हालांकि इस बयान ने अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर मूलनिवासियों पर चर्चा में स्पष्टता लाने का प्रयास किया, लेकिन भारत के मामले में यह जटिलताएं पैदा करता है। यह पैतृक भूमि के कब्जे के पहले कारक से लेकर कुछ हिस्सों में निवास तक विस्तृत है। भारत विश्व का एक सूक्ष्म रूप है। हमारे पास अलग-अलग भाषाएं बोलने वाले, अलग-अलग पन्थों का पालन करने वाले, अलग-अलग रीति-रिवाजों, अलग-अलग व्यवसायों और अलग-अलग वंशों से सम्बन्ध रखने वाले लोग हैं। भारत में मानवाधिकारों के मुद्दे मूलनिवासी और विदेशी के प्रश्न की अपेक्षा सुस्पष्ट आयाम हैं।

भाषा निश्चय ही किसी भी समाज के लिए एक महत्वपूर्ण चिह्नक है, किन्तु भाषाओं के मामले में भी हम पाते हैं कि इंडोयूरोपीय भाषाओं (76.89 प्रतिशत लोगों द्वारा इस गुट की 24 भाषाएं बोली जाती हैं). द्रविड (20.82 प्रतिशत लोगों द्वारा 17 भाषाएं बोली जाती हैं), ऑस्ट्रो-एशियाई (1.11 प्रतिशत लोगों द्वारा 14 भाषाएं बोली जाती हैं). तिबेटो-बर्मी (01.00 प्रतिशत लोगों द्वारा 66 भाषाएं बोली जाती हैं) और सेमाइटो-हैमिटिक (0.01 प्रतिशत लोगों द्वारा 1 भाषा बोली जाती है) जैसी अनेक भाषाएं देश में बोली जाती हैं। ताई-कड़ई और ग्रेट अण्डमानी भाषा परिवारों की भाषाएं बोलनेवाले लोग भी हैं, यद्यपि उनकी संख्या काफी कम है। भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाएं शामिल हैं।

यह भाषाई वैविध्य जनजातीय जनसंख्या में भी देखी जाती है। विभिन्न जनजातियां ऑस्ट्रो-एशियाई (मॉख्मर, मुण्डली सन्थाली, आदि), द्रविड (गोण्डी और कुरुख बोलिया) और भारोपीय (भीलों की बोली) भाषा परिवारों की भाषाएं बोलती हैं। अब जहां भाषा पर आधारित वर्गीकरण की ही यह स्थिति हो, हम भारत के जनजातीय व गैर-जनजातीय लोगों की जातीयता को लेकर किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकते हैं। संस्कृत जैसी अन्य कई प्राचीन भाषाएं, जिन्हें भारत की 'पुरातन' भाषाएं कही जाती है।" पाली व प्राकृत जैसी अन्य प्राचीन भाषाएं भी हैं जो वर्तमान में सामान्य बोलचाल में उपयोग नहीं की जाती हैं लेकिन अध्ययन और धार्मिक कर्मकाण्डों के लिए उनका उपयोग किया जाता है। इनमें से अनेक ने देश में आज बोली जानेवाली भाषाओं को जन्म दिया है, लेकिन सामान्य रूप से इन्हें भारतीय भाषाएं कहा जाता है। ये भाषाएं अनेक शताब्दियों के दौरान देश में ही जन्मीं और विकसित हुई। भारत में जिन भाषाओं को विदेशी कहा जाता है, वे हैं अंग्रेजी, फ्रान्सीसी और पुर्तगाली,

जिनका प्रवेश लगभग पूर्ण रूप से देश में औपनिवेशिक दौर में ही हुआ। अरबी, रूसी, चीनी और जापानी जैसी भाषाएं भी यहां पायी जाती हैं, जिनकी पहचान स्पष्ट रूप से अन्य देशों से की जा सकती है और जिनकी उत्पत्ति और विकास उन्हीं देशों में हुआ है। यहां किसी भाषा के दमन का प्रश्न है ही नहीं। जब एक व्यक्ति की मातृभाषा वह भाषा है जिसका उद्भव और विकास भारत में हुआ, अर्थात वह एक स्वदेशीय भाषा है, उस व्यक्ति को क्या कभी गैर-मूलनिवासी' समझा जा सकता है?

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई.एल.ओ.) ने 1957 में मूलनिवासी और जनजातीय जनसंख्या सम्मेलन (क्रमांक 107) को अपनाते हुए संयुक्त वाक्यांश 'मूलनिवासी और जनजातीय जनसंख्या का उपयोग किया है। वर्तमान में सम्मेलन वर्ष 1989 (संख्या 169) का समझौता प्रचलन में है। ये सम्मेलन : मूलनिवासियों शब्द की कोई औपचारिक परिभाषा नहीं देते हैं। तथापि, 1989 के समझौते के अनुच्छेद 1 में कहा गया है कि यह समझौता निम्नलिखित लोगों पर लागू होता है:

• (ए) स्वतन्त्र देशों में आदिवासी लोग जिनकी सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्थिति उन्हें राष्ट्रीय समुदाय के अन्य वर्गों से अलग करती है, और जिनकी स्थिति पूरी तरह या आंशिक रूप से अपने स्वयं के रीति-रिवाजों या परम्पराओं या विशेष कानूनों या विनियमों द्वारा नियन्त्रित होती है;

(बी) स्वतन्त्र देशों में लोग, जो देश में निवास करने वाली आबादी से उनके वंश के कारण मूलनिवासी माने जाते हैं, या एक भौगोलिक क्षेत्र जिसमें देश का सम्बन्ध है, बाह्य-विजय या उपनिवेशों के कायम होने या वर्तमान राज्य की सीमाओं की स्थापना के समय और जो अपनी कानूनी स्थिति के बावजूद, अपने स्वयं के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक संस्थाओं में से कुछ या सभी को बनाए रखते हैं। "*

इस विवरण में कोबो की परिभाषा के अधिकांश घटक शामिल हैं। यह परिभाषा लोगों को मूलनिवासी कहलाने के लिए एक समय-सम्बद्ध योग्यता प्रदान करती है, अर्थात, विजय या उपनिवेशवाद या वर्तमान राज्य की सीमाओं की स्थापना के समय। जहां वर्तमान देश के उपनिवेशीकरण या गठन की अवधि के कुछ गुण हैं, लेकिन कुछ समूहों को मूलनिवासी के रूप में अलग करना तथा अन्य को पूर्वजों की वंशावली से बाहर रखना, जो समुदाय अवधि-चिह्नन की शर्त पूरा करते हैं, मुद्दा बन सकते हैं।

विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन (डब्ल्यू.आई.पी.ओ.) एक अन्तर-सरकारी समिति की एजेन्सी के माध्यम से पारम्परिक ज्ञान के संरक्षण के लिए दो दशकों से भी अधिक समय से सम्भावित अन्तर्राष्ट्रीय कानूनी उपकरणों पर चर्चा कर रहा है। इस समिति की बैठकों में मूलनिवासियों के प्रतिनिधि पर्यवेक्षक के रूप में भाग लेते हैं। फिर भी, इस संगठन ने औपचारिक रूप से इस शब्द को परिभाषित नहीं किया है। लेकिन समिति द्वारा विचाराधीन पारम्परिक ज्ञान के संरक्षण पर एक कानूनी दस्तावेज के प्रारूप पाठ में, पारम्परिक ज्ञान को परिभाषित करते समय मूलनिवासी शब्द का प्रयोग किया गया है।

पारम्परिक ज्ञान से तात्पर्य मूलनिवासी, स्थानीय समुदायों और / या अन्य लाभार्थियों से उत्पन्न ज्ञान से है जो गतिशील और विकसित हो सकता है। और बौद्धिक गतिविधि, अनुभवों, आध्यात्मिक साधनों, या एक पारम्परिक सन्दर्भ में या उसमें अन्तर्दृष्टि का परिणाम है, जो जानकारी, कौशल, नवाचार, अभ्यास, शिक्षण, या सीखने सहित भूमि और पर्यावरण से जुड़ा हो सकता है।

वर्गाकार कोष्ठक वाले शब्दों और उनकी अभिव्यक्तियों को अभी तक सर्वसम्मति नहीं मिली है। मूलनिवासी वाक्यांश में निवासी एक ऐसा विवादास्पद शब्द है जिसे मूल शब्द द्वारा विशेषणयुक्त किया जाता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू.एच.ओ.) ने भी निम्नलिखित शब्दों में स्वास्थ्य सेवाओं के प्रावधान के सन्दर्भ में मूल आबादी वाक्यांश को इस रूप में परिभाषित किया है: वे समुदाय जो भौगोलिक रूप से अलग पारम्परिक आवास या पैतृक क्षेत्रों के भीतर रहते हैं, या जुड़े हुए हैं, और जो आधुनिक राज्यों के निर्माण और वर्तमान सीमाओं को परिभाषित करने से पहले उन क्षेत्रों में एक विशिष्ट सांस्कृतिक समूह का हिस्सा होने के रूप में वहां मौजूद रहे समूहों के वंशज के रूप में स्वयं की पहचान करते हैं। वे आम तौर पर अपनी सांस्कृतिक और सामाजिक पहचान, और सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृ तिक और राजनीतिक संस्थाओं को मुख्यधारा या प्रभावी समाज या संस्कृति से भिन्न रखते हैं*

'मूलनिवासी' की सरल परिभाषाओं में से एक यह है कि वे "ऐसे लोग हैं जो प्राचीन काल से सभी महाद्वीपों में बसे हुए हैं। वे अपनी भूमि पर रहते आए हैं, अपने सांस्कृतिक मूल्यों को बनाए रखे हैं, अपने पर्यावरण को अक्षुण्ण रखते हुए उसे विकसित करते आए हैं और सदियों से अपनी परम्पराओं को जीवित रखे हुए हैं। यह परिभाषा बिना किसी राजनीतिक प्रभाव के हैं और 'जनजाति' समूह समुदाय', जैसे शब्दों से परहेज करता है और उसमें शामिल करने के लिए एक कट-ऑफ वर्ष या अवधि निर्धारित नहीं करता है, सिवाय इसके कि उन समुदायों को उन क्षेत्रों में बहुत लम्बे समय से निवास करते रहना चाहिए था।

पश्चिमी मप्र का जनजाति स्वतन्त्रता सेनानी क्रांतिसूर्य जननायक टंट्या भील

✍ डॉ. मदन सिंह वास्केल

सहायक प्राध्यापक (प्राणी-शास्त्र)
भेरूलाल पाटीदार शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय महू (इंदौर)
अध्यक्ष, वनवासी कल्याण परिषद मध्य भारत, इंदौर

प्रस्तावना:;भील प्राचीन काल से भारत वर्ष का निवासी रहा है, पश्चिमी मप्र बाहुल्य धार, झाबुआ, अलिराज पुर, बड़वानी, खरगोन जिलो मे भील समुदाय निवासरत है, अपनी वीरता स्वाभिमान, अचुक तीर कौशल, वफादारी, के कारण इतिहास में जनजाति समाज की विशिष्ट पहचान है। दुर्गम स्थलों पर समूह बस्तियो में निवास कर अपना जीवनयापन करना भिलो की हजारो वर्ष पुरानी संस्कृति है। मालवा निमाड़ अंचल मे अलौकि किवदंती बने टंट्या भील जनसेवा परोपकार के लिए सदैव समर्पित रहे है। जाबाज योद्धा और देशभक्त टंट्या मामा ने अंग्रेजो के अत्याचार से गरीबो और शोषितो को मुक्त करने के लिए सतत् संघर्ष किया और अपने प्राणो का बलिदान दिया। खंडवा जिले की पन्धाना तहसील के छोटे से जनजाति गाँव बडदा अहीर मे टंट्या मामा का जन्म सन् 1842 मे भाऊ सिंह भील के घर हुआ । टंट्या मामा दुबले पतले बालक ने जन्म लेकर भविष्य के सत्ताधारी अंग्रेजो को ही नहीं अपितु जमीदारो, मालगुजारो, जागीरदारो से सतत् संघर्ष कर सत्ता एवं पदों की गरिमा, सम्मान और अधिकार बचाने हेतु संघर्ष किया।

इतिहास :- मलगुजार और जमीदारो के शोषण के विरुद्ध संघर्ष का शंखनाद करने वाला फटेहाल वनवासी युवक टंट्या भील देखते ही देखते अंग्रेज सत्ता और जमीदारो का शत्रु बन गया तथा अनजाने ही स्वयं की तरह प्रताड़ित गरीबो, दुखियों, शोषित, पीड़ितों का सहयोगी बनकर जनता का जन नायक बनकर इतिहास में अमर हो गया।

सेवा पथ ने टंट्या भील को "जगत मामा ‘‘के सम्मान से ऐसा सम्मानित किया कि आज भी निमाड़ मालवा अंचल के भील जनजाति समाज के लोग "मामा" शब्द से संबोधित किये जाने पर अपने आप को गौरव का अनुभव करते हैं। निमाड़ क्षेत्र के जनजाति समाज आज भी टंट्या मामा को लोकदेवता मा हैं! अमीरो को लूट कर गरीबो में बाटने वाले टंट्या मामा की लोकप्रियता से और संघर्ष से त्रस्त तात्कालिक अंग्रेज सरकार ने भी उसे ‘‘इंडियन रोबिन हुड " स्वीकार किया था आज़ादी के इतिहास में सतत बारह वर्षों तक सशत्र संघर्ष करने वाले टांटिया मामा बहादुरी अथवा साहस से नही अपितु छल से धोखे से गणपत राजपूत नामक जयचंद के विश्वासघात के कारण गिरफ्तार होकर फाँसी पर झूलना पड़ा।

लोककल्याणकारी छबि के चलते टांटिया मामा के नाम से प्रसिद्धक्रांतिकारी ने कई वर्षों तक ब्रिटिश शासन को चैनकी सांस नही लेने दी। और उनके लिए एक चुनौती बने रहे। 1874 से अपनी गिरफ्तारी तक इन्होंने अनेक अवसरों पर सरकारी खजानो को लूटा और उसे जनसाधारण समाज में बांट दिया करते थे।

संघर्ष की राह:- टांटिया मामा अंग्रेजों, जमीदारों मालगुजारो द्वारा गरीब जनजाति समाज एवं गैर जनजाति समाज पर हो रहे अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष किया | इन अंग्रेजों द्वारा अत्याचार और अन्याय को सहन नही किया | टांटिया मामा एक गाँव से दूसरे गाँव व एक जंगल से दूसरे जंगल घूमता हुआ लोगों के सुख दुःख का साथी बनने लगा। वह गाँव वालों के सुख दुःख की जानकारी लेता, गाँव के भूखे, कमजोर, अत्यंत, गरीब व युवा युवती के परिवारों से प्रेम पूर्वक मिल कर लूट एवं डाके से प्राप्त सामग्री उन गरीब परिवारों में बाट दिया करते थे। उसके अगले गाँव में पहुंचने से पहले ही उसकी ख्याति पहले ही पहुंच जाती। अतः उसके पहुँचने पर ग्रामवासी किसी सम्मानित महापुरुष की तरह उसे सम्मान देते थे। अंग्रेजों द्वारा कर लगा कर रेलगाड़ी में भरकर माल अनाज ले कर आते थे तब टांटिया मामा अपने साथियों के साथ मिल कर इंदौर के पास स्थित पातालपानी में ट्रेन रोक कर पूरा माल लूट लिया करते हैं। इसलिए उस समय के जागीरदार जमीदार मालगुजार अंग्रेजों द्वारा टांटिया मामा को चोर डकैत लुटेरे की संज्ञा दी गई। लेकिन वास्तव में जितना भी लुटा गया माल गरीबो में बाट दिया करते थे।

टांटिया मामा जन संगठन, जनता के प्यार और विश्वास से इतना निर्भीक, दुःसाहस और चमत्कारी हो गया था कि जनता में व्याप्त आम चर्चाओ को सिद्ध करने में उसके कोई कसर बाकी नही रखी । जैसे टांटिया मामा को सूचना मिली की उसे गिरफ्तार करने के लिए अंग्रेज सरकार ने ठेठ अंग्रेज अफसर को बुलाया है और वह ट्रेन आ रहा था तो टांटिया ने उसे सबक सिखाने का तत्काल निर्णय लिया और ग्रामीण के वेश में पहले हरेलवे स्टेशन पर पहुँच कर उस अंग्रेज अफसर को अपने घोड़े पर बैठा कर जंगल में ले कर चला गया | उस अंग्रेज अफसर से पूछा कँहा जाना और किससे मिलना है तो वह अंग्रेज अफसर ने जवाब दिया यँहा पर एक दुबला पतला आदिवासी लड़का बहुत बहादुर है। ऐसा सुना है उससे मिलना है तो टांटिया मामा ने कहा तुम उसे जानते हो तो उसने कहा नही | अच्छा तुम उससे डरते हो क्या तो उसने कहा वह बहुत खूंखार है। वह व्यक्ति में ही हूँ यह सुन कर अंग्रेज अफसर काँपने लग गया । यह सूचना यँहा के अंग्रेज पुलिस को पता चला तो अंग्रेज पुलिस घने जंगलों में ढूंढ ढूंढ कर पूरा जंगल छान मारा पर प वह नहीं मिला। उसके पश्चात अंग्रेज पुलिस थक कर बैठ गए तो अचानक टांटिया मामा उनके सामने खड़ा हो कर बोला कि मैं ही टंट्या हूँ। अब मुझे पकड़ कर अब मुझे पकड़ कर बता लाल मुँह के बंदर और वह देखते ही देखते सबके सामने जंगल में भाग गया। पुलिस ने गोलियां भी चलाई और पूरे जंगल को छान मारा लेकिन टांटिया मामा उन्हें नही मिला क्योंकि टांटिया मामा तो जंगल का राजा जो ठहरा था।

साहसी योद्दा था टांटिया मामा:- टांटिया मामा की साहस और कुशलता के साथ निमाड़

क्षेत्र में प्रसिद्ध से तंग आकर एक एक अंग्रेज पुलिस अधिकारी ने पुलिस कि अस्थायी चौकी पर डेरा जमाया और डींगे हाँकी कि टंट्या अब कुछ ही दिनों का मेहमान है वह बहुत जल्दी हमारे कब्जे में होगा। उसे मेरे हाथों से कोई नहीं बचा सकता है। यह बात जैसे ही टंट्या मामा तक पहुँची वैसे ही टांटिया मामा ने नाई की वेशभूषा में सीधे ही पुलिस चौकी पर बेधड़क चला गया और अहंकारी पुलिस अधिकारी की दाढ़ी बनाते और ब करते हुए उसने उस्तरे से उसकी नाक जड़ से काट दी। सबके सामने देखते ही देखते जंगल में भाग गया।

ऐसे अनगिनत कार्य किये। अंग्रेज सरकार और होल्कर राज्य की जानकारी में टंट्या के डाको की संख्या सैकड़ों में पहुँच गई।टांटिया मामा के बागी जीवन में लगभग 400 डाके डाले और हजारों परिवारों की दुआएं कमाई | टांटिया ने डाके, लूट की आगजनी की परन्तु हत्याएं उन्ही अंग्रजो और गरीबों का शोषण करने वाले शत्रु एवं विश्वासघाती थे।

टांटिया मामा के इन सभी कारनामो से विवस होकर अंग्रेज सरकार जमीदार साहूकार में पूरे क्षेत्र में मोर्चाबंदी कर दी थी जिस कारण कई कई दिनों तक भीख की पीड़ा झेलनी पड़ी उसे रात रात भर खुले मैदान रहना पड़ा।सूखे वृक्षों की जड़ो की खोह में बैठ कर जागते हुये रात गुजारनी पड़ी। कच्चे फलो और बासी सुखी रोटी से पेट भरना पड़ा । प्रचण्ड धूप घनघोर बारिश और कलेजा चिर देने वाली ठण्ड में उसे अपने और अपने समाज के लिए बचा कर रखना पड़ा। इस प्रकार टांटिया मामा अपने जीवन काल के 46 वर्ष तक अंग्रेजों और होल्कर राज्य के विरुद्ध संघर्ष करते रहे।

विश्वासघात और फाँसी : - 11 अगस्त सन 1886 श्रावण माह की पूर्णिमा थी जिसे हम रक्षाबंधन के पावन पर्व के रूप में मानते हैं। उसी दिन विश्वास बना चुकी मुँह बोली बहन ने राखी बांधने अपने घर पर बुलाई। टंट्या मामा को पवित्रता और सौभाग्य का अवसर लगा। जैसे कि टंट्या मामा ने अपना हाथ राखी बांधने के लिए आगे बढ़ाया वैसे ही पहले से घर में छुपी अंग्रेज पुलिस ने टांटिया मामा को गिरफ्तार कर लिया। बहन के पति गणपत राजपूत अंग्रेज केगुलाम बन कर बहन और जीजा के विश्वाघात के कारण टंट्या मामा अंग्रेजो के हाथों में आय। रक्षाबंधन के पावन पर्व पर बहन के नाम पर टंट्या जैसे भाई की गिरफ्तारी, कैद और जेल का उपहार का किसी को भी प्राप्त नही हुआ होगा। टांटिया मामा को पकड़कर टांटिया को जंजीरो से जकड़कर दोनो हाथो में हथकड़ी पहना कर खंडवा जेल में रखा गया | खंडवा जेल की दीवार की ऊँचाई टंट्या मामा की ऊँचाई से तीन इंच अधिक थी अंग्रेजी ने निर्णय लिया कि टंट्या मामा को जबलपुर जेल में रखा जाए || जब टांटिया मामा गिरफ्तार हो गया यह सूचना पूरे क्षेत्र में आग की तरह ग तरह फैली पूरा समाज अथाह दुःखी हुआ और बहुत से बहनों ने अपने आप को आग के हवाले कर दिया। जब टांटिया 1 मामा को खंडवा जेल से ट्रेन के माध्यम से जबलपुर जेल ले जा रहे थे तो खंडवा और जबलपुर के बीच पड़ने वाले रेलवे स्टेशन पर उनके चाहने का हजारों लोगों का हुजूम उमड़ पड़ा था।

राठिया जनजाति की कनाश गोत्र, तहसील गंधवानी -जिला धार के धार्मिक पूजा, त्यौहार और उत्सव

✍ डॉ. अनिता सोलंकी

सहप्राध्यापक (प्राणीशास्त्र)
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महू, मप्र.भारत

प्रस्तावना :

राठिया जनजाति भारत देश की एक खास जनजाति है। पूर्व शोधकर्ताओं के अनुसार राठिया जनजाति मूलतः गुजरात से संबंध रखती है। राठिया जनजाति मध्यप्रदेश के पश्चिम निमाड़ के क्षेत्रों में बसी हुई है। राठिया जनजाति को रठवा,राठवा और राथवा आदि नामों से भी जाना जाता है।यह जनजाति मूलतः भारतीय जनजाति है।यह जनजाति मध्यप्रदेश के पश्चिम निमाड़ की नर्मदा घाटी के आसपास और पहाड़ी क्षेत्रों में बसी हुई है।

राठिया जनजाति कई प्रकार की गोत्र में विभाजित है, इसमें से एक कनाश गोत्र भी है।कनाश गोत्र को कनास,कनासे और कनासिया आदि नामों से भी पुकारा जाता है।कनाश गोत्र के लोग मध्यप्रदेश के धार, झाबुआ, अलिराजपुर, बड़वानी और खरगोन जिले में बसी हुई है।आज के शोध पत्र में मैंने मध्यप्रदेश के धार जिले की गंधवानी तहसील में बसी हुई कनाश गोत्र की जनजाति के धार्मिक पूजा, त्यौहार और उत्सव का वर्णन किया है।

अध्ययन क्षेत्र-

मेरा अध्ययन क्षेत्र भारत के मध्यप्रदेश राज्य के धार जिले की गंधवानी तहसील है। गंधवानी तहसील जिले के ठीक मध्य की में स्थित है। इस तहसील में कई पहाड़ियां, नदियां और तालाब है। यहां की जमीन ज्यादातर पथरीली है।इस तहसील में बसे कनाश गोत्र के लोग बहुत ही भोले हैं एवं बहुत ही कर्मठ होते हैं।कनाश गोत्र के लोग अपने खेतों में जमकर मेहनत करते हैं। जिनके पास खेती करने के संसाधन नहीं हैं वे खरीफ की फसल आने के बाद दूसरे स्थान पर मजदूरी करने चले जाते हैं। ये लोग अपनी गोत्र के लोगों को भाई- बेटा कहते है और उन्हें ख़ास महत्व देते हैं।कनाश गोत्र के लोग अपने काम काज में व्यस्त रहने के बाद भी वर्ष भर अपनी परंपरा अनुसार धार्मिक पूजा, त्यौहार और उत्सव को बड़ी शिद्दत से मनाते हैं।

धार्मिक परंपरागत पूजा, त्यौहार और उत्सव -

कनाश गोत्र के आदिवासी अपनी धार्मिक परम्पराओं के अनुसार वर्ष भर कई प्रकार की पूजा, त्यौहार और उत्सव के द्वारा अपने देवी देवताओं का आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। इनके अनुभवी बड़े-बुजुर्गों से पूछने पर उन्होंने बड़े ही विस्तार से अपनी धार्मिक परम्पराओं, पूजा,

त्यौहार और उत्सव के बारे में अपने अनुभव साझा किए।वे बताते है कि गर्मी के मई-जून में वे खरीफ की फसल के लिए खेतों को तैयार कर लेते हैं बारीश होने के बाद वे बोवनी करते हैं। बोवनी के कार्यों से निपटने के बाद जुलाई माह से ही इनके परम्परागत धार्मिक पूजा, त्यौहार और उत्सवों की शुरुआत हो जाती है। इनके द्वारा वर्ष भर मनाये जाने वाले त्यौहार और उत्सव निम्नलिखित हैं-दीवासा,नवई,कूलदेवी पूजा, दशमी पूजा,डोहा,चौदस-अमावस उत्सव, भगोरिया उत्सव,खत्रिया पूजा,हल पूजा आदि।

1. दीवासा-यह त्यौहार जुलाई माह की अमावस्या को मनाया जाता है। इस दिन बाबादेव (भिलट देव) की पूजा की जाती है।इसी दिन से सागवान के नये पत्तों को घर में लाकर उपयोग करने की शुरुआत होती है। पूजा में देव को मूरगे की बलि दी जाती है। यदि मूरगे को मारना नहीं हो तो उसका नाखून काटकर बाबा को चढ़ा देते हैं और मूरगे को छोड़ देते हैं।इस दिन शाम को खाने में आटे और गूड़ के घोल से मीठे तायें बनाए जाते हैं
2. नवई-अगस्त माह में खरीफ की फसल खाने योग्य पक जाती है, लेकिन जब तक नवई की पूजा नहीं होती कोई भी इसे नहीं खाते हैं। इस दिन घर का मुखिया अपने देवी देवताओं को पहली फसल के भूट्टे, फलियां,काचरी, ककोड़े और करेले जैसी उपज को चढ़ावे के रूप में अर्पित करते हैं और अपने परिवार के साथ पहली फसल की उपज को खाकर खुशी मनाते हैं।
3. कूलदेवी पूजा- कनाश गोत्र के लोगों की कूलदेवी कैवई माता बताई गई है। जब देश में नवरात्रि पर्व मनाया जाता है तब ये लोग अपनी कैवई माता की पूजा करते हैं। कूलदेवी को प्रसन्न करने के लिए निंबू, नारियल ,चुड़ियां,सिंदूर, श्रंगार और ओढ़नी अर्पित करते हैं तथा मिट्टी के दीपक में तेल डालकर प्रज्वलित करते हैं।चावल,घी और गुड़ का नैवेद्य अर्पित करते हैं एवं अपने कूल की सलामती की कामना करते हैं।
4. दशमी पूजा-दशमी के दिन कूलदेवी को बलि चढ़ाई जाती है। इस दिन हर घर में गोबर के 10 कण्डे(उपले)बनाए जाते है जिन्हें सूखाकर चौदस की पूजा में उपयोग किए जाते हैं।
5. डोहा-दशहरे और दीवाली के मध्य में यह उत्सव मनाया जाता है। इसमें महीलाएं मिट्टी की मटकी में छोटे छोटे छेद करके उसके अंदर जलता हुआ दीया रखकर नाचते गाते हुए घर घर जाकर मांगती है और समूह में खाना बनाकर खाती है और उत्सव मनाती हैं।
6. चौदस-अमावस- इस जनजाति के लोग पशुओं को बहुत महत्व देते हैं।दशमी के दिन जो 10 कण्डे बनाए गए थे,उन्हें चौदस के दिन लाईन से रखकर जलाया जाता है और उस पर लोहे की छड़ को गर्म करके पालतू पशुओं को गोदना देते हैं, मान्यता है कि इससे पशु बीमार नहीं होते हैं। घर के मुख्य द्वार जहां से पशु आते जाते हैं वहां गेरूआ खड़ी से पोता जाता है। अमावस्या को पशुओं को सजाकर काकड़ देव की परिक्रमा करवाते हैं और पान डालकर देवी देवताओं की पूजा करते हैं।मीठा त्यौहार बनाकर उत्सव मनाया जाता है। इसके बाद खरीफ की फसल को अवेकर कुछ लोग दूसरे स्थान पर मजदूरी करने चले जाते हैं।

7. भोंगरिया उत्सव-गेंहू चने की कटाई के बाद होली के पूर्व भंगोरिया उत्सव मनाया जाता है।इस पर्व पर गांव के आसपास जहां भी हाठ बाजार लगता है वहां पर पारंपरिक ढोल-मांदल की थाप पर समूह नृत्य करते हैं और हाठ में उपलब्ध जलेबी,पान, चना, मिठाई और खाद्य सामग्रियों का लुत्फ उठाते हैं।टेसू के फूलों का प्राकृतिक रंग लगाते हैं।
8. खत्रिया पूजा-होली के आसपास के दिनों में खत्रिया पूजा करते है असल में यह पूर्वजों की पूजा करते हैं। चावल, घी और गुड़ चढ़ाते हैं।
9. हल पूजा- यह पूजा वर्ष की अंतिम पूजा होती है। इसमें में खेतों में उपयोग किए जाने वाले हल की पूजा करते हैं।यह पूजा आखातीज पर की जाती है।महूए के फूलों के व्यंजन बनाकर खाते हैं। हल की पूजा करके खेतों में हल बखर करके बोवनी के लिए तैयार करते हैं।

निष्कर्ष-इस प्रकार से शोधानुसार भारत की राठिया जनजाति के कनाश गोत्र के लोगों की अनूठी धार्मिक परंपरागत पूजा, त्यौहार और उत्सव की जानकारी प्राप्त हुई। सदियों से चली आ रही परंपराओं को इन्होंने आज भी बरकरार रखा है।इस गोत्र के लोग अपनी प्रकृति से जुड़े हुए हैं। इनके देवी देवताओं के स्थान किसी न किसी पेड़ के नीचे ही हैं और जिस पेड़ के नीचे देवी देवताओं की स्थापना है उस पेड़ की प्रजाति को काटना और उपयोग वर्जित मानते हैं। इस तरह ये पेड़ों की कटाई को प्रतिबंधित कर प्रकृति की सुरक्षा करते हैं।इस जनजाति के लोगों को शिक्षा का महत्व भी बखूबी समझ आया है। सरकारी योजनाओं का लाभ मिलने से ये शिक्षा, चिकित्सा और प्रशासनिक कार्यों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।इस जनजाति के लोग प्राकृतिक रूप से जल- जंगल-जमीन से जुड़े हुए हैं। में अपनी हर धार्मिक पूजा , त्यौहार और उत्सव में प्रकृति को शामिल करते हैं। इनके अस्तित्व को बचाए रखना आवश्यक है जिससे हमारे देश की अनूठी जनजाति का अस्तित्व इस पृथ्वी पर बना रहे।

संदर्भ ग्रंथ-

1. एथनोलॉग में राठवा, (19वा संस्करण, 2016).
2. ए, बी, सी, डी, ई, एफ "राठवा का संक्षिप्त विवरण"। जनजातीय अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, गुजरात सरकार। 2 जून 2019.
3. ए बी सी लाल, अरबी (1970) "छोटा उदयपुर के राठवा: एक लघु नृवंशविज्ञान नोट"। जर्नल ऑफ सोशल रिसर्च। XIII (2):119 -126।
4. राठवा-विकिपीडिया।

मूलनिवासी का अलगाववादी षड्यंत्र

✍ रवि शंकर

लेखक सभ्यता अध्ययन केंद्र के निदेशक हैं।

प्रत्येक वर्ष 09 अगस्त को आज का विश्व मूलनिवासी दिवस मनाता है, जिसे भारत में कुछ लोग आदिवासी दिवस भी कहते हैं। मूलनिवासी हो या फिर आदिवासी, इन शब्दों का प्रयोग बिना सोचे-समझे किया जाता है। वस्तुतः ये शब्द अनुवाद के रूप में प्रयोग किये जाते हैं, न कि मूल प्रस्थापनाओं के रूप में। ये संकल्पनाएं भी मौलिक नहीं हैं, यूरोपीय संकल्पनाओं का अनुवाद मात्र हैं। जैसे निवासियों का मूल ढूंढने के प्रयास हो रहे हैं, हम इस आलेख में शब्दों के मूल को ढूंढने का प्रयास करेंगे।

मूलनिवासी या आदिवासी शब्द अंग्रेजी के इंडिजीनियस शब्द का हिंदी अनुवाद है। इंडिजिनियस किसे कहा जाता है? अंग्रेजी शब्दकोश इसका एक अर्थ बताता है – जो उस परिवेश में प्राकृतिक रूप से रहता हो या उसी परिवेश में उपन्न हुआ हो। लेकिन इसका एक दूसरा अर्थ है – वर्तमान में प्रभावी समूह द्वारा उपनिवेश बनाए जाने से पहले जो समूह वहाँ रहता रहा हो। मनुष्यों के मामले में ये दोनों ही अर्थ इतिहास से जुड़े हुए हैं। पहला अर्थ प्राचीन इतिहास से जुड़ा है और दूसरा अर्थ बहुत ही आधुनिक काल से जुड़ा हुआ है। हैरानी का विषय है कि मूलनिवासी दिवस मनाने वाला संयुक्त राष्ट्र इंडिजिनियस की यह व्याख्या नहीं करता। वह इस शब्द की परिभाषा करने से भी बचता है। वह अपनी एक फैक्टशीट में लिखता है कि एक अनुमान के अनुसार विश्व के 70 देशों में 37 करोड़ से अधिक मूलनिवासी रहते हैं। ...मूलनिवासियों में अमेरिका के लोग हैं (उदाहरण के लिए अमेरिका में लाकोटा, ग्वाटेमाला में माया और बोलिबिया में आएमारा), सरकमपोलर क्षेत्र में इनुइट तथा एल्युटियन हैं, उत्तरी यूरोप में सामी हैं, आस्ट्रेलिया में एबओरिजीन तथा टोरेस हैं और न्यूजीलैंड में माओरी हैं।

यह रोचक बात है कि इनमें से एक भी क्षेत्र या देश एशियायी नहीं है। ये सारे वे प्रदेश हैं, जहाँ यूरोपीय अपने अंधकारयुग के कालखंड में भूखमरी, महामारियों आदि से अपनी रक्षा करने के लिए भाग निकलकर गए थे। परंतु फिर भी संयुक्त राष्ट्र मूलनिवासी शब्द की व्याख्या करने में वह साहस नहीं दिखाता जो अंग्रेजी का शब्दकोश दिखाता है। वह लिखता है, "संयुक्त राष्ट्र के तंत्र ने मूलनिवासियों की विविधता को देखते हुए इसकी कोई आधिकारिक परिभाषा नहीं स्वीकार की है। इसकी बजाय इसने इस शब्द की निम्न् आधारों पर एक

आधुनिक समझ विकसित की है –

1. व्यक्तिगत स्तर पर अपनी पहचान मूलनिवासी के रूप में स्थापित करना जिसे उसके समुदाय द्वारा स्वीकृत किया गया हो

2. ऐतिहासिक रूप से उपनिवेशपूर्व अथवा पहले से बसा समाज

3. संबंधित क्षेत्र तथा प्राकृतिक संसाधनों से गहन संबंध

4. भिन्न तथा विशिष्ट सामाजिक, आर्थिक, या राजनीतिक तंत्र

5. भिन्न तथा विशिष्ट भाषा, संस्कृति तथा आस्था

6. समाज का अप्रभावी समूह

7. एक भिन्न व्यक्ति-समूहों तथा समुदायों के रूप में अपनी पूर्वजों की पहचान को संरक्षित तथा संवर्धित करने के प्रति दृढ़प्रतिज्ञ समाज"

इसके बाद संयुक्त राष्ट्र का यह फैक्टशीट लिखता है, "इंडिजिनियस शब्द कुछ वर्षों से एक सामान्य तथा व्यापक शब्द के रूप में प्रचलित हुआ है। कुछ देशों में कुछ अलग शब्दों जैसे कि ट्राइब, फर्स्ट पीपुल/नेशन, एबओरिजिनल, एथनिक समूह, आदिवासी, जनजाति आदि को प्रमुखता दी जा रही है। शिकारी/संग्राहक, घुमंतू, किसान, पहाड़ी जैसे आजीविकासंवंधी तथा भौगोलिक शब्द भी प्रयोग में हैं और व्यावहारिक उद्देश्य से इन सभी के लिए इंडिजिनियस पीपुल शब्द का प्रयोग किया जा सकता है।"

ध्यान रखना चाहिए कि शब्दकोश एक अकादमिक महत्त्व का ग्रंथ होता है, जबकि संयुक्त राष्ट्र के पत्र या घोषणाएं अंतरराष्ट्रीय कूट तथा भेदनीति का हिस्सा होती हैं। संयुक्त राष्ट्र कोई अकादमिक संस्था नहीं है, यह एक पोलिटिकल संस्था है। इसलिए संयुक्त राष्ट्र इस परिभाषा में भारत जैसे देशों में समाजतोड़क प्रयासों की स्थापनाओं को अपनी पारिभाषिक समझ में स्थान देने का प्रयास कर रहा है। वस्तुतः मूल परिभाषा तो उसकी समझ का दूसरा बिंदू मात्र ही है, परंतु भारत जैसे देशों में अलगाववादी प्रयासों को बल प्रदान करने के लिए उसने शेष सभी शब्दजाल की रचना की है। विचारणीय यह है कि संयुक्त राष्ट्र की इस परिभाषा के अनुसार इटली में इतालवी लोग मूलनिवासी नहीं हैं, जर्मन लोग जर्मनी के मूलनिवासी नहीं हैं, फ्रांसीसी लोग फ्रांस के मूलनिवासी नहीं हैं, चीनी लोग चीन के मूलनिवासी नहीं हैं। वस्तुतः इस समझ के अनुसार किसी भी देश का समाज वहाँ का मूलनिवासी नहीं रह जाएगा।

मूलनिवासी तथा आदिवासी

वस्तुतः यदि औपनिवेशिक दृष्टि को त्याग कर किसी समाज के बारे में उसकी अपनी अवस्था तथा इतिहास के संदर्भ में विचार करें तो मूलनिवासी शब्द एकदम ही निरर्थक प्रतीत होगा। मूल निवासी का अर्थ हुआ मूल यानी उस स्थान विशेष के मानवी इतिहास के मूल से वहाँ का निवासी। आज जबकि मनुष्य के इतिहास में प्रत्येक 25-30 वर्षों में परिवर्तन हो रहा है, मूल की खोज करना एक अनावश्यक कार्य ही है। भारत के संदर्भ में देखें तो मात्र 120 वर्ष पहले तक यूरोपीय भारत का इतिहास वेदों के काल से प्रारंभ करते थे और इसलिए उन्होंने उसे केवल 1500 ईसापूर्व में साबित किया। फिर उन्हें लगभग 100 वर्ष पहले हड़प्पा

तथा मोहनजोदाड़ो में नगरीय सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए जो कि किसी भी प्रकार से 2500 ईसापूर्व से अधिक नए साबित नहीं किए जा सके। तब उन्हें आर्यों के आगमन की कल्पना करनी पड़ी। अब हड़प्पा में मिली सभ्यता का विस्तार गंगा घाटी तक हो गया है और उसका कालखंड नौ हजार वर्ष ईसापूर्व तक चला गया है। ऐसे में मूल कहाँ से माना जाए। क्या आधुनिक पुरातत्त्वविद् यह मानने के लिए तैयार हैं कि अब उनके खोदने के लिए भारत में कुछ भी नहीं बचा? वस्तुस्थिति तो यह है कि उन्होंने अभी 0.1 प्रतिशत की खुदाई भी नहीं की है।

इसी प्रकार आदिवासी शब्द भी है। आदि यानी प्रारंभ से। प्रश्न उठता है कि आदि कब से माना जाए? होमोसैपियन तो आधुनिक कल्पना है और वह उन आदिवासियों की भी समझ से परे है, जिनके लिए यह कल्पना की जा रही है। जिन्हें ये आदिवासी कह रहे हैं, उनकी अपनी कथाओं में वे स्वयं कहीं और से आकर यहाँ बसे हैं। तो क्या उनसे पहले यहाँ कोई नहीं रहा होगा? यदि हम जनजातीय समाज की प्रारंभ की कथाओं पर ध्यान दें तो हमें पता चलेगा कि जब वे यहाँ रहने आए, उस कालखंड में भारत में और भी लोग रहा ही करते थे। जैसे झारखंड की खड़िया जनजाति का इतिहास देखें।

इसी प्रकार झारखंड के ही मुंडा लोगों का इतिहास भी देश के अन्य समुदायों के सहअस्तित्व से ही प्रारंभ होता है। ये दोनों ही उदाहरण यह स्पष्ट कर देते हैं कि औपनिवेशिक शब्द इंडिजिनियस के लिए आदिवासी और मूलनिवासी के शब्दप्रयोग बिल्कुल भी उचित नहीं हैं। यह हम आगे देखेंगे कि भारत के जिन समुदायों को आदिवासी या मूलनिवासी बताने के प्रयास संयुक्त राष्ट्र तथा उसके वित्तीय समर्थन से खड़े अलगाववादी व्यक्ति तथा संस्थाएं कर रही हैं, उन समुदायों को इस प्रकार किसी एक वर्ग में बांधना भी नितांत गलत ही है।

ट्राइब, नृतत्त्वविज्ञान और उपनिवेशवाद

ट्राइब शब्द का अर्थ यदि हम शब्दकोश में देखें तो इसके दो ही अर्थ समझ आते हैं। पहला है कोई एक परिवार समूह, जिसमें कई सारे परिवार रहते हों। दूसरा है रोमन लोगों का पोलिटिकल गुट। शब्दकोश बताता है और यह लगभग सर्वस्वीकृत भी है कि ऐसे लोगों का समूह जिसकी संस्कृति, पूर्वज, भाषा आदि समान हो और जो एक बंद समाज की तरह रहते हों, ट्राइब कहे जाएंगे। यह परिभाषा भी बहुत स्पष्ट नहीं है और इस परिभाषा में ऐसे समूह भी आ जाएंगे, जिन्हें आज आदिवासी नहीं माना जाता। इन परिभाषाओं में जो एक बात नहीं कही जा रही है, परंतु ट्राइब कहते ही सभी समाजविज्ञानी जो समझ लेते हैं, वह है ऐसे समुदाय जो सामान्य रूप से वनों या पर्वतों पर रहता हो, शिकार करता हो, यूरोपीय परिभाषाओं के अनुसार होमोसैपियनों जैसा दिखता और रहता हो। यानी कुल मिला कर विकास की यूरोपीय परिभाषा से दूर हो। इसलिए इन्हें वे आदिम यानी ऐसे लोग जो सभ्यतागत विकास में सबसे पीछे हों, कहते हैं।

ट्राइब शब्द की उत्पत्ति पर चर्चा करते हुए राबर्ट जे ग्रिगोरी लिखते हैं, “लेकिन हर किसी को ट्राइब का सहस्य नहीं घोषित किया जा सकता। जिन लोगों ने सामान्यतः राष्ट्र-राज्यों में

शामिल होने का प्रतिरोध किया, उन्हें उन राष्ट्र-राज्यों ने ट्राइब कह दिया गया। 'दुनिया ने उन्हें उस नाम से जाना, जो उनके द्वारा स्वीकृत नहीं था।(फ्रायड, 1975)' फ्रायड कहता है, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि ट्राइब का विकास राज्य की उत्पत्ति से जुड़ा है, लेकिन उसमें तेजी प्राचीन साम्राज्यों के बनने के बाद आई और उसमें उफान औपनिवेशिकता तथा साम्राज्यवाद के उभार के बाद आया। …जो भी हो, यूरोपीय उपनिवेशवाद के काल में ट्राइब एक प्रमुख लेबल बन गया।" वास्तविकता वह है जो इस लेखक ने अपनी अंतिम पंक्ति में कहा है यानी यूरोपीय औपनिवेशिकता के काल में यूरोपीय लोगों ने ट्राइब शब्द का प्रयोग एक लेबल की तरह किया। इन ट्राइब को पिछड़ा साबित करने के लिए अभी उन्हें इसका सैद्धांतिक पक्ष भी गढ़ना था। इसमें उनका साथ दिया डार्विन के विकासवाद ने, जिसके आधार पर उन्होंने समाजविज्ञान की एक नई विधा का विकास किया – नृतत्त्वविज्ञान। उन्होंने मनुष्य के नस्लीय विकास की अवधारणा सामने रखी। पूरे विश्व के समस्त मनुष्यों को विभिन्न नस्लों में विभाजित किया और उनके विकास की एक रोचक कथा की कल्पना की। बाद में उस कथा के लिए प्रमाणों को एकत्र किया गया और इस पूरी मेहनत को नृतत्त्वविज्ञान का नाम दे दिया गया।

विकासवाद के आधार पर उन्होंने यह स्थापित किया कि प्रारभ में मनुष्य जंगली और असभ्य था। यह बात उस समय पूरे विश्व में प्रचलित मानवी सभ्यता के इतिहास के एकदम विपरीत थी। उस समय पूरे विश्व में यह माना जाता था कि मानव प्रारंभ से ही विकसित और सभ्य था। यूरोपीयों ने इसके विपरीत बात कही, क्योंकि उन्हें अफ्रीकी तथा अमेरिकी लोगों को हेय और उनके नरसंहार को न्यायोचित साबित करना था। मानव के विकास की इस नयी कहानी के अनुसार, "पाषाणकालीन लोग पशुओं के मांस तथा मछली का स्वास्थ्यवर्धक भोजन लेते थे, जिसमें फल, बेर, गिरियां और जंगली पौधे भी शामिल थे, लेकिन उन्हें सामाजिक रचना के बारे में शायद ही कुछ पता था। यदि आज के शिकारी-संग्राहक समाज को हम संकेत के रूप में देखें तो अनुमानतः वे एक विस्तारित परिवार की तरह रहते थे जो कि जीवित बचे रहने पर ट्राइब में परिणत हो गया। एकल परिवार के माता-पिता और बच्चों के विपरीत, विस्तारित परिवार में पुराने बचे हुए संबंधी जैसे कि भाई-बहन, चाचियां, चाचा, भतीजे-भतिजियां, चचरे, ममरे भाई-बहन आदि रहते थे। ट्राइब ऐसे ही एकल तथा विस्तारित परिवारों से बना होता था जिनके समान पूर्वज होते थे।" यह सारा का सारा एक परिकल्पना मात्र ही है। इसके कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। यह मनोहर कहानियां से अधिक कुछ नहीं है, जिसे हमें विज्ञान के नाम पर पढ़ाया जा रहा है। इसे और स्पष्टता से समझने के लिए नृतत्त्वविज्ञान के विकास को देखना चाहिए।

यह एक सत्य है कि "नृतत्त्वविज्ञान का विकास यूरोपीय खोजों, उपनिवेशवाद और प्रकृतिविज्ञान के संश्लेषण से हुआ है।" इन्हें पहले एथनोग्राफर कहा जाता था। एथनोग्राफी ही नृतत्त्वविज्ञान को शेष समाजविज्ञान से अलग करती है। मोनाघन और जस्ट आगे लिखते हैं, "20वीं शताब्दी के प्रारंभ में इनका काम केवल उपनिवेशवाद के कारण वहाँ के निवासियों

के जीवन में आने वाले परिवर्तनों को लिपिबद्ध करना था। हालाँकि यह कहना या मानना गलत होगा कि वे समाज पश्चिम से संपर्क में आने से पहले एकदम जड़ थे या फिर अलग-थलग पड़े थे।" इस प्रकार हम देख सकते हैं कि ट्राइब की परिकल्पना और नृतत्त्वविज्ञान दोनों ही यूरोपीय उपनिवेशवाद से जुड़े हुए हैं। विज्ञान का जामा केवल इसे सत्य साबित करने के लिए पहनाया जाता है। अन्यथा यह सारा हवाई परिकल्पनाओं के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इस बात का अनुमान उन्हें भी है और इसलिए वे लिखते हैं, "अक्सर हम पाते हैं कि हमारी सबसे बड़ी ताकत कहानी कहना है।" यह बात नृतत्त्वविज्ञानियों के लिए कही गई है।

ट्राइब और नृतत्त्वविज्ञान के इस सच को जानने समझने के बाद हम भारत में इन दोनों के व्यवहार पर ध्यान देंगे। जैसा कि हमने ऊपर देखा, यूरोपीय ट्राइब लेबल का उपयोग अपनी औपनिवेशिक नीतियों को मजबूत करने के लिए करते थे, भारत में भी उन्होंने यही काम किया। उन्होंने भारत के लोगों को अनेक नस्लों में बाँटने का प्रयास किया। उनमें से कुछ को ट्राइब कहा। ट्राइब कहने का आधार पहले भौगोलिक रखा गया यानी जंगलों तथा पहाड़ों पर रहने वाले लोगों तथा समुदायों को ट्राइब कह दिया गया। उन्होंने इसके लिए अनुसूचियों का निर्माण किया। वही अनुसूचियां स्वाधीन भारत में चलती हैं। परंतु स्वाधीन भारत में भी इन अनुसूचियों में किसी समुदाय को शामिल करने के आधार निश्चित नहीं है। इसके लिए केवल एक ही बात कही गई है – राष्ट्रपति जिसे अधिसूचित करें। यह तो मनमानीपन हुआ।

विचारणीय यह भी है कि ट्राइब शब्द का अनुवाद भारत में झटके से जनजाति कर दिया जाता है। विचार करें कि जनजाति शब्द का क्या अर्थ है? क्या यह जाति शब्द से भिन्न कुछ है? यदि हाँ तो इसकी परिभाषा कहाँ है? कोई भी यह जानकर हैरान हो सकता है कि भारत के संविधान तक में इसकी कोई परिभाषा नहीं की गई है। वैसे भी भारतीय संविधान मूलतः अंग्रेजी में लिखा गया है और वहाँ ट्राइब शब्द ही लिखा है। स्पष्ट है कि भारतीय संविधान के निर्माताओं ने इस पर ध्यान नहीं दिया कि ट्राइब एक औपनिवेशिक अवधारणा है और वे जिससे मुक्ति के लिए संघर्ष करते रहे, उसको ही स्वाधीनता के बाद पूरे भारत पर थोप रहे हैं। इस अवधारणा का निर्माण ही शोषण और भेद पैदा करने के लिए हुआ है। स्वाभाविक ही है कि मूलनिवासी के नाम पर इस अवधारणा का प्रयोग आज भी देश में अलगाववाद पैदा करने के लिए ही किया जा रहा है। दुर्भाग्य यह है कि भारत सरकार जहाँ एक ओर यह घोषणा करती है कि 1947 के बाद हरेक भारतीय यहाँ का मूलनिवासी है, वहीं भारत सरकार द्वारा प्रकाशित एनसीईआरटी की पुस्तकें पढ़ाती हैं – ट्राइब या आदिवासी का अर्थ होता है मूलनिवासी। यह विरोधाभास इस अलगाववाद को और मजबूत ही कर रहा है।

भारत के स्वाधीनता संग्राम में गुण्डाधुर का योगदान

✍ डॉ. गजेन्द्र कुमार
सहायक प्राध्यापक, गुरु धासीदास, विश्वविद्यालय, बिलासपुर

भारत अपनी स्वतंत्रता के 75 वर्ष पूरे कर स्वतंत्रता का 'अमृत महोत्सव' मना रहा है। ऐसे में देश के उन अमर सपूतों को याद किया जाना चाहिए जो प्राण हथेली पर लेकर स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े थे। इतिहास में स्वतंत्रता के अनेक नायकों का वर्णन मिलता है, परंतु बहुत से ऐसे नायक भी हैं, जिनके साथ इतिहास न्याय नहीं कर सका है।

गुण्डाधुर को आज भारत के ज्ञात जनजातीय नायकों के बीच जो स्थान मिलना चाहिये था वह अभी तक अप्राप्य है। भारत के जनजातीय आन्दोलनों के इतिहास में वर्ष 1910 जैसे उदाहरण कम ही मिलते हैं जहाँ एक पूरी रियासत के जनजातीय जन अपनी जातिगत विभिन्नताओं से ऊपर उठकर, अपने बोलीगत विभेदों से आगे बढ़कर जिस एकता के सूत्र में बँध गये थे उसका नाम था गुण्डाधुर।

शहीद गुंडाधुर को अंग्रेजो के विद्रोहियों का सर्वमान्य नेता माना जाता है। गुंडाधुर का जन्म बस्तर के एक छोटे से गांव नेतानार में धुरवा जनजातीय समुदाय में हुआ था। शहीद गुंडाधुर सामान्य जनजातीय व्यक्ति थे, जिन्होंने न तो कभी पाठशाला का मुंह देखा था और न ही बाहरी दुनिया में कदम रखा था। 35 साल की उम्र में उन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ ऐसी लडाई छेड़ी कि कुछ समय तक अंग्रेजों के दांत खट्टे कर दिए थे। हालात तो ये हो चले थे कि अंग्रेजों को कुछ समय छिपने के लिए जंगलों में गुफाओं का सहारा लेना पड़ा था।1

भूमकाल का अर्थ भूमि में कम्पन या भूकंप से है। भूमकाल एक ऐसा आदोंलन था जिसने सम्पूर्ण बस्तर को हिलाकर रख दिया था। इस आंदोलन के पीछे अनेक कारण थे। इनमें वन नीति, अनिवार्य शिक्षा, धर्म परिवर्तन, बेगारी प्रथा, नौकरशाही आदि प्रमुख है।[2]

पूर्व में काकतीय वंश के राजा भैरम देव (1852-1891) का राज्य था। भैरम देव के भाई लाल कालेन्द्र सिंह बस्तर रियासत के दीवान थे। राजा भैरम देव की दो पत्नियाँ थी, परन्तु कोई पुत्र नहीं था। जीवन के उत्तरार्ध में उन्हें एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम रूद्र प्रताप रखा गया। विषम परिस्थितियों को देखते हुए मात्र छः वर्ष की अल्पायु में ही रुद्र प्रताप को बस्तर का राजा घोषित कर दिया गया।

कालांतर में राजा रुद्र प्रताप देव तथा चाचा (दीवान लाल कालेन्द्र सिंह) के बीच किसी बात को लेकर अनबन हो गई। अंग्रेजों से मिलकर राजा रुद्र प्रताप देव ने कालेन्द्र सिंह को दीवान पद से हटा दिया तथा अंग्रेजों के कृपापात्र पंडा बैजनाथ को दीवान नियुक्त कर दिया गया।[3]

दीवान का पद संभालने के बाद बैजनाथ पंडा ने ऐसी वन नीति बनाई थी कि बस्तर के सारे वन शासनाधीन हो गये। इससे बस्तर की आर्थिक स्वतंत्रता समाप्त हो गई। वनवासियों का वन संबंधी अधिकार छिन गया। वन में प्रवेश गैर कानूनी हो गया। इंधन (जलाऊ लकड़ी), जड़ी-बूटी, कंद-मूल, फल-फूल एवं विभिन्न वनोपज से वनवासी वंचित हो गये।[4]

इसी बीच दीवान बैजनाथ पंडा ने एक और विवादास्पद कदम उठाते हुए बस्तर में अनिवार्य शिक्षा लागू कर दी। आम जनमानस को साक्षरता के शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करने की बजाय अनिवार्य शिक्षा का कानून जबरदस्ती लाद दिया। इस कानून को लागू करने के लिए सिपाहियों की मदद से जबरन बच्चों को निकाला जाने लगा। विरोध करने वाले अभिभावकों को कई तरह से प्रताड़ित किया जाने लगा।

सत्ता की निरंकुशता और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने में बस्तर के वनवासी कभी पीछे नहीं रहे। हल्बा (डोंगर) विद्रोह, भोपालपट्नम विद्रोह, परलकोट विद्रोह, सन् 1910 का विप्लव आदि इसके दस्तावेजी प्रमाण हैं। सन् 1910 का विप्लव ही बस्तर में भूमकाल विद्रोह के नाम से प्रचारित हुआ।

भूमकाल आंदोलन की बुनियाद वर्ष 1891 में पड़ी जब अंग्रेजों ने बस्तर के तत्कालीन राजा रूद्र प्रताप देव के चाचा लाल कालेंद्र सिंह को दीवान पद से हटा दिया।[5] रूद्र प्रताप देव अंग्रेजों के प्रति समर्पित राजा थे, लेकिन दीवान के रूप में प्रशासन का जिम्मा उनके चाचा लाल कालेंद्र सिंह के पास था और वे इसे बेहतर ढंग से निभाते भी थे। जनजातीय समाज में उनकी अच्छी लोकप्रियता थी। ऐसे में लाल कालेंद्र सिंह को दीवान पद से हटाकर पंडा बैजनाथ को बस्तर का प्रशासन सौंपा जाना आदिवासियों को पसंद नहीं आया। अति तब हो गई जब बैजनाथ के काल में अंग्रेजों द्वारा आदिवासियों पर अत्याचार शुरू कर दिए गए। जंगल बचाने के नाम पर आदिवासियों को उनके ही जंगलों से दूर किया जाने लगा। साथ ही उनके मतांतरण का प्रयास भी किया जाने लगा। ऐसी स्थिति में कालेंद्र सिंह ने सूत्रधार की भूमिका निभाते हुए आदिवासियों को संगठित किया और गुंडाधुर के नेतृत्व में अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र भूमकाल आंदोलन की तैयारी शुरू हो गई। धुरवा युवक लम्बे-ऊँची कदकाठी के होते हैं मूँगे की माला और रंग बिरंगे गहने उनका शौक है। इनकी अपनी बोली और जातीय परंपराए हैं। बस्तर की काँगेरघाटी के ईर्द-गिर्द बसे धुरवा बेटे-बेटियों के विवाह में जल को साक्षी मानते हैं, अग्नि को नहीं। इनके नृत्य, गीत आपसी संवाद की बोली धुरवी कहलाती है। धुरवी बोली में यह जनजाति संवाद करती हैय यह बोली द्रविड़ भाषा परिवार का हिस्सा है। होली से पहले एक माह तक चलने वाला पर्व गुरगाल धुरवा समाज का परिचय देती परम्परा है। यह एक नृत्य प्रधान उत्सव है। कुछ सामाजिक समरस्ताओं से सम्बन्धित परम्परायें भी हैं

जैसे अबूमाड़िया जनजातीय नेरोम की लड़ी धुरवा जनजाति के युवक-युवतियों को देकर जहाँ प्रेम का इजहार करते हैं। धुरवा जाति के युवक बाँस से बनी खूबसूरत टोकरियों तथा बाँस की कंघी भेंटकर अपने प्रेम का इजहार करते हैं, बदले में युवतियाँ सुनहरी-चाँदी के रंग की पट्टियों वाली लकड़ी की कुल्हाड़ी देकर प्रेम निमंत्रण का जवाब देती हैं।[6]

उस दौर में गुंडाधुर की अधिकतम लोगों तक ऐसी पहुंच थी कि उनके विषय में अनेक किंवदंतियां फैलने लगीं। कोई कहता कि गुंडाधुर को उड़ने की शक्ति प्राप्त है तो कोई कहता कि वह लड़ाई के समय अपने जादू से अंग्रेजों की गोलियों को पानी बना देगा। इन किंवदंतियों से इतर गुंडाधुर की जमीनी योजना-रचना ऐसी थी कि आंदोलन शुरू होने से पूर्व अंग्रेजों को इसकी कोई भनक तक नहीं लगी। लाल मिर्च लिपटी आम की डाल जिसे 'डारा मिरी' कहा जाता था, उसके माध्यम से पूरे क्षेत्र में भूमकाल का संदेश प्रसारित किया गया।

यह सही है कि भूमकाल की परिकल्पना दो अलग अलग समानांतर दृष्टिकोणों से चल रही थी। भूमकाल एक गुथां हुआ आन्दोलन था जिसके स्पष्टतः दो पक्ष थे- जनजातीय तथा गैर जनजातीय। एक ओर सामंतवादी सोच के साथ लाल कालेन्द्र सिंह सत्ता को अपने पक्ष में झुकाना चाहते थे तो दूसरी ओर जनजातीय जन अपने शोषण से त्रस्त एक ऐसा बदलाव चाहते थे जहाँ उनकी मर्जी के शासक हों और उनकी चाही हुई व्यवस्था। गुण्डाधुर में एक ओजस्विता, नेतृत्व क्षमता तथा वाक पटुता थी जिसे दृष्टिगत रखते हुए भूमकाल के प्रमुख योजनाकारों में से एक लाल कालेन्द्र सिंह ने उसे नेतानार गाँव से बाहर निकाल कर विद्रोह का नेता बना दिया।

फरवरी 1910 में पूरे बस्तर में एक साथ भूमकाल का आगाज गुंडाधुर के संगठन कौशल और पक्की योजना का ही परिणाम था। आंदोलन की शुरुआत पुलिस चौकियों और सरकारी कार्यालयों पर हमले व बाजारों की लूट के रूप में हुई। देखते ही देखते, आंदोलनकारियों ने बस्तर के प्रमुख शहर जगदलपुर को छोड़ शेष बस्तर के अधिकांश क्षेत्रों पर अधिकार जमा लिया। अंग्रेज सिपाहियों और आजादी के मतवालों के बीच कई बार मुठभेड़ हुई, जिसमें तीर-धनुष और फरसा-भाला से लड़ने वाले आदिवासियों ने ब्रिटिश शासक के बंदूकधारी सिपाहियों को भागने पर मजबूर कर दिया।

जगदलपुर के लिए चली अंग्रेज सेना को रास्ते में कड़े संघर्ष का सामना करना पड़ा, तब जाकर वो जगदलपुर पहुंच पाई। इस बीच अंग्रेजों को आभास हो गया था कि गुंडाधुर के कुशल नेतृत्व में लड़ रहे आंदोलनकारियों से सीधे लड़कर पार पाना आसान नहीं है, इसलिए उन्होंने छल की रणनीति अपनाते हुए आदिवासियों से बातचीत का नाटक किया। अंग्रेज सेना के कप्तान ने हाथ में मिट्टी लेकर कसम खाई कि जनजातीय लड़ाई जीत गए हैं और शासन का कामकाज उनके अनुसार ही चलेगा। भोले-भाले जनजातीय लोग कुटिल अंग्रेजों की चाल नहीं समझ पाए और मिट्टी की कसम के झांसे में आ गए।

आंदोलनकारी अलनार में एकत्रित होकर अपनी विजय का जश्न मना रहे थे तभी रात में अंग्रेजों ने उन पर अचानक हमला कर दिया। इस हमले में बहुत जनजातीय लोग हताहत

हुए। लेकिन गुंडाधुर को पकड़ना तो दूर अंग्रेज उनकी शक्ल भी नहीं देख पाए। हालांकि बाद में सोनू माझी नामक एक आंदोलनकारी लोभवश अग्रेजों से मिल गया जिस कारण गुंडाधुर के कुछ साथी पकड़ लिए गए। लेकिन तब भी अंग्रेज सरकार गुंडाधुर को नहीं पकड़ सकी। गुंडाधुर अंग्रेजों के लिए एक रहस्य ही बनकर रह गए। अंततः अंग्रेजों को गुंडाधुर की फाइल इस टिप्पणी के साथ बंद करनी पड़ी कि 'कोई यह बताने में समर्थ नहीं है कि गुंडाधुर कौन था।[6]

गुंडाधुर के अस्तित्व को लेकर अंग्रेजों की कोई भी राय रही हो, लेकिन बस्तर का जनजातीय समाज पूरी आस्था के साथ आज भी उन्हें अपना नायक मानता है। बस्तरवासी गुंडाधुर की याद में भूमकाल दिवस मनाते हैं। वर्ष 2014 में गणतंत्र दिवस के अवसर पर राजपथ पर निकली छत्तीसगढ़ की झांकी के केंद्र में गुंडाधुर को रखा गया था। यह उनके महत्व को दर्शाता है। लेकिन दुर्भाग्य कि देश के ऐसे नायक से आज देश की बड़ी आबादी परिचित नहीं है। भूमकाल 20वीं सदी का आंदोलन है, लेकिन इस दौर के आंदोलनों के इतिहास में इसकी चर्चा शायद ही कहीं हुई हो। भूमकाल और गुंडाधुर का इतिहास देश के हर व्यक्ति को जानना चाहिए, जिससे देश की युवा पीढ़ी न केवल स्वाधीनता आंदोलन में जनजातीय नायकों के योगदान से परिचित हो सके अपितु जल, जंगल और जमीन से जुड़ाव की प्रेरणा भी ले सके।

धुरवा जनजाति के लोग पानी के फेरे लेकर जिंदगी भर एक दूजे के संग रहने की कसमें खाते हैं। महत्वपूर्ण और रेखांकित करने वाला तथ्य है कि इन फेरों में सिर्फ वर-वधु ही नहीं होते, बल्कि पूरा गाँव शामिल होता है। पानी और पेड़ की पूजा ही धुरवा जनजाति की हर प्रमुख परम्परा के केन्द्र में होती है।[7] आर्थिक पिछड़ापन अब धुरवा जनजाति की सबसे बड़ी समस्या है सम्भवतः इनके सिमटते जाने का यही प्रमुख कारण भी है। धुरवा जनजाति की उपजाति परजा अब विलुप्त हो गयी है। बस्तर की जनजातीय संस्कृति व सम्मान की रक्षा के लिए अंग्रेजों के खिलाफ 1910 में हुए महान भूमकाल क्रांति के प्रणेता गुण्डाधुर की अपनी ही जाति को आज अपने अस्तित्व बचाने के लिए गुहार लगाना पड़ रहा है। संवैधानिक संरक्षण की कमी के चलते धुरवा आदिवासियों को अपनी बोली, भाषा, संस्कृति, रहन-सहन पर संक्रमण के खतरे का एहसास होने लगा है। धुरवा जंगल, जल, जमीन का हक खो चुके हैं। भय, भूख और भ्रष्टाचार के सताए धुरवा बेदखल होकर दिहाड़ी मजदूरी के लिए भी भटक रहें हैं। देखा जाये तो धुरवा समाज के हाशिये पर जाने का एक कारण 1910 का भूमकाल भी है क्योंकि इस क्रांति के दमन के पश्चात अंग्रेजों ने बहुत निर्ममता से इस वीर कौम को कुचला। कोड़े मारे गये, अपमानित किया गया, शस्त्र ले कर चलने पर पाबंदी लगा दी गयी।

इस आवश्यक चर्चा से निकल पर पुनः नेतनार गाँव के उत्साही धुरवा - गोंदू अर्थात गुण्डाधुर की ओर लौटते हैं। मुरियाराज की संकल्पना के साथ गुण्डाधुर को वर्ष-1910 की जनवरी में ताड़ोकी की एक जनसभा में लाल कालेन्द्र सिंह की उद्घोषणा के द्वारा सर्वमान्य नेता चुना गया (फॉरेन डिपार्टमेंट सीक्रेट, 01.08.1911)। लाल कालेन्द्र ने प्रमुख नायक

चुनने के बाद परगना स्तर पर अलग अलग नेता नामजद किये।[8] मंच पर बुला कर उनका भव्य सम्मान किया गया। यह सम्मान प्रेरणा स्त्रोत था जिसके बाद भूमकाल की योजना पर कार्य आरंभ हो गया। इसके साथ ही गुण्डाधुर ने अपने भीतर छिपी अद्भुत संगठन क्षमता का परिचय दिया। गुण्डाधुर ने सम्पूर्ण रियासत की यात्रा की। वह एक घोटुल से दूसरे घोटुल भूमकाल का संदेश प्रसारित करता घूमता रहा। डेबरीधूर उत्साही युवकों का संगठन तैयार करने में लग गया था। इतनी बड़ी योजना पर खामोशी से अमल हो रहा था। इसके पीछे गुण्डाधुर और लाल कालिन्द्रसिंह, दोनों का ही बेहतरीन नेतृत्व कार्य कर रहा था। 'जनजातीय और गैर-जनजातीय' जैसे शब्द मायनाहीन हो गये और ''बाहरी'' शब्द की परिभाषा ने स्पष्टाकार ले लिया। बाहरी अर्थात अंग्रेज, अंग्रेज अधिकारी, दीवान पण्डा बैजनाथ, पुलिस, डाक कर्मचारी, अध्यापक, मिशनरी। यह नायक जहाँ जाता उसका स्वागत किसी देवदूत के आगमन के सदृश्य होता। सच्चे नायक जानते हैं कि योजना कैसे मूर्त की जाती है। वह बिना थके अधिक से अधिक समूहों से जुड़ना चाहता थाय अधिक से अधिक घोटुलों में पहुँच कर भूमकाल की मूल भावना प्रसारित करना चाहता था। जीवट था वह किसी ने उसके तेजस्वी मुख पर लेशमात्र भी थकान नहीं देखी। जन-जन तक अनेक तरह की कहानियाँ गुण्डाधुर के विषय में कही सुनी जाने लगीं। यह कहानी विशेष उल्लेखनीय है। ''नेतनार गाँव में हनगुण्डा नाम की दुष्ट औरत रहती थी। उसने सब को तंग कर के रखा था। गाँव वालों ने मिल कर सोचा कि कैसे इस हनगुण्डा को मारा जाये जिससे कि सभी सुखी हो जायें। गुण्डाधुर को इस काम के लिये चुना गया। गुण्डाधुर तो सबकी मदद के लिये हमेशा आगे रहता था वह तैयार हो गया। गुण्डाधुर ने गायता को साथ में लिया और दोनों हनगुण्डा की तलाश में निकल पड़े। हनगुण्ड़ा को पता चला कि गाँववाले उसे मारना चाहते हैं तो वह गुस्से से और भयानक हो गयी। उसने शेर का रूप धरा और 'सिरहा' की बकरी को खा गयी। गुण्डाधुर ने शेर बनी हुई हनगुण्डा पर बहुत से तीर चलाये। किसी भी तीर का शेर पर असर नहीं हुआ। दूसरे दिन फिर से हनगुण्डा शेर बन कर आयी और उसने सिरहा का लमझेना उठा लिया। अगले दिन फिर से वह गायता का बैल उठा ले गयी। इस बार गुण्डाधुर शेर के पीछे पीछे भागा। उसने देखा कि बैल का खून पी लेने के बाद शेर ने अपनी पीठ को पीपल के झाड़ पर रगड़ा। तभी वह शेर आदमी का रूप लेने लगा। जब शेर आधा आदमी और आधा शेर बन गया तब गुण्डाधुर अपनी तलवार ले कर उसके सामने आ गया। वह यह देख कर चौंक गया कि असल में हनगुण्डा कोई और नहीं उसकी अपनी माँ है।[9].....लेकिन गुण्डाधुर ने तलवार चला कर गर्दन उड़ा दी। गाँव की भलाई के लिये और अपनी माटी के लिये वह कुछ भी कर सकता था।

गुण्डाधुर का कुशल प्रबंधन देखने योग्य था। राज्य के दक्षिण पूर्वी हिस्से में विद्रोही कई दलों में विभाजित थे और एक साथ कई मोर्चों पर युद्ध हो रहा था। गुण्डाधुर तक हर परिस्थिति की सूचना निरंतर पहुँचायी जा रही थी। जब और जहाँ विद्रोही कमजोर होते वह स्वयं वहाँ उत्साह बढ़ाने के लिये उपस्थित हो जाता। यह युद्ध केवल अंग्रेज अधिकारियों, पुलिस या कि राजा के सैनिकों के बीच ही तो नहीं था। यह दो प्रतिबद्धताओं के बीच का

युद्ध हो गया था। एक ओर राजा और उसके समर्थक जनजातीय और दूसरी ओर मुरिया राज के लिये प्रतिबद्ध जनजातीय। हर बीतते दिन के साथ विद्रोही अधिक मजबूत होते जा रहे थे। दुःखद पहलू यह भी है कि कई स्थलों पर युद्ध में अपने ही अपनों का खून निर्दयता से बहा रहे थे। इन्द्रावती नदी घाटी के अधिकांश हिस्सों पर दस दिनों में मुरियाराज का परचम बुलन्द हो गया।

अपनी पुस्तक बस्तर एक अध्ययन में डॉ. रामकुमार बेहार तथा निर्मला बेहार ने तिथिवार कुछ जानकारियों का संग्रहण किया है जिन्हें मैं उद्धरित कर रहा हूँ-''25 जनवरी को यह तय हुआ कि विद्रोह करना है और 2 फरवरी 1910 को पुसपाल बाजार की लूट से विद्रोह आरंभ हो गया। इस प्रकार केवल आठ दिनों में गुण्डाधुर और उसके साथियों ने इतना बड़ा संघर्ष प्रारंभ कर के एक चमत्कार कर दिखलाया। 7 फरवरी 1910 को बस्तर के तत्कालीन राजा रुद्रप्रताप देव ने सेंट्रल प्राविंस के चीफ कमिश्नर को तार भेज कर विद्रोह प्रारंभ होने और तत्काल सहायता भेजने की माँग की। (स्टैण्डन की रिपोर्ट, 29.03.1910)। विद्रोह इतना प्रबल था कि उसे दबाने के लिये सेंट्रल प्रोविंस के 200 सिपाही, मद्रास प्रेसिडेंसी के 150 सिपाही, पंजाब बटालियन के 170 सिपाही भेजे गये (फॉरेन डिपार्टमेंट फाईल, 1911)। 16 फरवरी से 3 मई 1910 तक ये टुकड़ियाँ विद्रोह के दमन में लगी रहीं। ये 75 दिन बस्तर के विद्रोही आदिवासियों के लिये तो भारी थे ही, जन साधारण को भी दमन का शिकार होना पड़ा। अंग्रेज टुकड़ी विद्रोह दबाने के लिये आयी, उसने सबसे पहला लक्ष्य जगदलपुर को घेरे से मुक्ति दिलाना निर्धारित किया। नेतानार के आसपास के 65 गाँवों से आये बलवाइयों के शिविर को 26 फरवरी को प्रातः 4:45 बजे घेरा गया। 511 जनजातीय लोग पकड़े गये जिन्हें बेंतों की सजा दी गयी (फॉरेन डिपार्टमेंट फाईल, 1911)। नेतानार के पास स्थित अलनार के वन में हुए 26 मार्च के संघर्ष में 21 जनजातीय लोग मारे गये। यहाँ आदिवासियों ने अंग्रेजी टुकड़ी पर इतने तीर चलाये कि सुबह देखा तो चारो ओर तीर ही तीर नजर आये (फॉरेन डिपार्टमेंट फाईल, 1911)। अलनार की इस लड़ाई के दौरान ही आदिवासियों ने अपने जननायक गुण्डाधुर को युद्ध क्षेत्र से हटा दिया, जिससे वह जीवित रह सके और भविष्य में पुनः विद्रोह का संगठन कर सके। ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं कि 1912 के आसपास फिर सांकेतिक भाषा में संघर्ष के लिये तैयार करने का प्रयास किया गया (एंवल एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ बस्तर फोर द ईयर 1912। कुछ के अनुसार पुचल परजा और कुछ के अनुसार लाल कालेन्द्र सिंह ही गुण्डाधुर थे (फॉरेन पॉलिटिकल सीक्रेट, 01.08.1910) बस्तर का यह जन नायक अपनी विलक्षण प्रतिभा के कारण इतिहास में सदैव महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करता रहेगा''।[10]

पूरे आन्दोलन को समग्रता से देखा जाये तो नेतानार का एक साधारण धुरवा, अद्भुत संगठनकर्ता सिद्ध हुआ था। दंतेवाड़ा से ले कर कोण्डागाँव तक लड़ी गयी हर बड़ी लड़ाई में गुण्डाधुर स्वयं उपस्थित था। कितनी ही लड़ाइयों के बाद विजय के जश्न पिछले पंद्रह दिनों में मनाये गये। अपनी जय जयकार के बीच मुरियाराज की स्थापना का पल निकट आता महसूस

हो रहा था। एक ओर विद्रोही राजधानी को घेर कर बैठे थे और दूसरी ओर गेयर, दि ब्रेट और उसने साथ पहुँची अंग्रेज सैन्य टुकड़ियों के कारण तनाव की स्थिति निर्मित हो गयी थी। गेयर को यह अनुमान था कि जब तक अतिरिक्त मदद उसे प्राप्त नहीं हो जाती है किसी भी तरह सीधे संघर्ष को रोक कर रखने में ही लाभ है। वही चिर परिचित चालाकी से काम लिया गया जिसके लिये कायर अंग्रेज जाने जाते रहे हैं। गेयर को ज्ञात था कि माटी ही आदिवासियों का जीवन है और देवता है। अपने प्रशासकीय कार्यकाल के दौरान अनेक मुकदमों में उसने पाया था कि आदिम 'मिट्टी की कसम' खा कर झूठ नहीं बोलते। यहाँ तक कि हत्या जैसे मुकदमों में भी मिट्टी की कसम खिलाये जाते ही आदिमों ने अपराध यह जानते हुए भी कबूल कर लिया था कि उन्हें फाँसी की सजा हो जायेगी। इसी सरलता और निष्कलंकता को गेयर ने अपने आखिरी हथियार की तरह इस्तेमाल किया। उसने मिट्टी हाथ में उठा कर आदिवासियों की सभी समस्याओं को हल करने की कसम खाई। उसने विश्वास दिलाया कि जनजातीय लोग अपनी लड़ाई जीत गये हैं। अब आगे का शासन उनके अनुसार ही चलाया जायेगा। जनजातीय लोग इस चाल में आ गये। भला माटी की कोई झूठी कसम खा सकता है? माटी तो सभी की देवी है, वह बस्तरिये हों या कि अंग्रेज। समूह में से कुछ विद्रोहियों को सहमति के आधार पर समझौते के लिये नामित किया गया। इनका कार्य गुण्डाधुर और सरकार के बीच संवाद स्थापित करना था। गेयर सभा से उठा तो उसके चेहरे पर विजयी मुस्कान थी। वह भावनात्मक बेवकूफ तो हर्गिज नहीं था। इसके अलावा इतना व्यवहारिक भी था कि कसम-वसम जैसी बातों को वाहयात समझे। मिट्टी की सौगंध खा कर गेयर ने मनोवैज्ञानिक अस्त्र साधा था। उसने आदिम समूहों को भी मिट्टी की कसम उठाने के किये बाध्य कर दिया कि जब तक बातचीत की प्रक्रिया चलेगी, विद्रोही आक्रमण नहीं करेंगे। इसके बाद वार्ता प्रारंभ हुई। हर बार प्रस्तावों को किसी न किसी टाल मटोल के साथ गेयर लौटा देता। विद्रोहियों को लगता कि उनकी बात सुनी जा रही है और गेयर के लिये इंतजार का एक एक दिन कटता जा रहा था। यह संदेश अंग्रेजों तक पहुँच चुका था कि 24 फरवरी की सुबह-सुबह मद्रास और पंजाब बटालियन जगदलपुर पहुँच जायेंगी। देर से मिली सूचना के बाद भी जबलपुर, विजगापट्टनम, जैपोर और नागपुर से भी 25 फरवरी तक सशस्त्र सेनाओं के पहुँचने की उम्मीद बन गयी थी।[11]

जैसे ही अंग्रेज शक्ति सम्पन्न हुए तुरंत ही राजधानी से विद्रोहियों को खदेडने की कार्यवाही प्रारंभ कर दी गयी। विद्रोही हतप्रभ थेय मिट्टी की कसम खा कर भी धोखा? क्या गेयर के अपने देश में मिट्टी का कोई मान नहीं होता? झूठ और साजिश से मिली जीत से भी अंग्रेजों को कोई ग्लानि नहीं होगी? फौज की अपराजेय ताकत और आग उगलने वाले हथियारों वाली सेना को नंग-धडंग, कुल्हाड़-फरसा धारियों से युद्ध जीतने में षडयंत्र करना पड़ता है? इसके लिये वे शार्मिन्दा भी नहीं होते? गोलियाँ चलने लगीं। यह विद्रोहियों के लिये अनअपेक्षित था, वे तैयार भी नहीं थे। गुण्डाधुर ने पीछे हटने का निर्णय लिया। सरकारी सेना आगे बढ़ती जा रही थी और विद्रोही जगदलपुर की भूमि से खदेड़े जा रहे थे। कई विद्रोही

गिरफ्तार कर लिये गये और कई बस्तर की माटी के लिये शहीद हो गये।

बेगारी प्रथा से वनवासी तंग आ चुके थे। एक पादरी था जो वनवासियों से धर्म परिवर्तन करना चाहता था। अधिकारी जब दौरे पर आते थे, तो आवभगत में उनके मुर्गे और बकरे भी भेंट में चढ़ जाया करते थे। प्रजा अपने अधिकार के प्रति चिंतित थी और राजा अपने सिंहासन के लिए चिंतित था।

भीतर ही भीतर जनजातीय समाज में व्यवस्था के खिलाफ असंतोष बढ़ता ही गया और विप्लव की चिंगारी फूट पड़ी। निष्कासित दीवान लाल कालेन्द्र सिंह आदिवासियों की नाराजगी की चिंगारी को आग के रुप में भड़काने के लिए भूमकाल की कल्पना की।

ग्राम नेतानार का एक जनजातीय युवा बाहरी लोंगो से बहुत नफरत करता था, उसका नाम था गुंडाधुर। गुंडाधुर को विद्रोह का नेतृत्व करने के लिए चुना और भविष्य की रणनीति तैयार की। गुंडाधुर युवा और अच्छा यौद्धा था। कुशल रणनीतिकार भी था।

अलग-अलग जाति समाज से नेता चुनकर राजा एवं अंग्रेजों के खिलाफ गुंडाधुर ने सबको एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया। जाति समाज से प्रमुख सभी नेताओं ने अपने स्तर पर संगठन तैयार किया ताकि वे अलग-अलग जगह से विद्रोह का नेतृत्व कर सकें। इन नेताओं ने ढेबरी धुर, सोनु मांझी, मुंडी कलार, मुसमी हड़मा, धानु धाकड़, बदरू, बुटलु आदि प्रमुख थे, जो गुंडाधुर के विश्वसनीय भी थे।

उलनार नामक गांव में सभी क्रांतिकारियों की बैठक आयोजित की गई तथा यहीं क्रांति का संकल्प लिया गया और "डारा मिरी" के साथ राशन लेकर निकल पड़े। लाल मिर्च बांधी आम की डाल को "डारा मिरी" कहते थे। इस डारा मिरी रणनीति से सभी गांव तक गुप्त रुप से सूचना पहुंच जाती थी और वनवासी भुमकाल में सम्मिलत होते जा रहे थे।

एक साधारण सा वनवासी युवा कुशल संगठनकर्ता के रुप में ख्याति प्राप्त कर लिया। सन 1910 में सारे संगठन सक्रिय हो गये। तीर-कमान, फरसा, भाला, टंगिया (कुल्हाड़ी) आदि हथियारों से सुसज्जित होकर उपद्रव करना शुरु कर दिया।[12]

यह बहुत भी भयानक रात थी। पराजित, थके हुए तथा मनोबलहीन विद्रोही जगदलपुर से आठ किलोमीटर दूर स्थित अलनार गाँव में एकत्रित हुए। किसी तरह गेयर तक खबर पहुँच गयी कि विद्रोही अलनार में एकत्रित हो गये हैं। गुण्डाधुर के नेतृत्व में सुबह होते ही महल पर हमला किया जायेगा। यद्यपि यह अत्यंत साहसिक हमला ही सिद्ध होता चूँकि मशीनगनों से सज्जित अंग्रेजी सेना महल की सुरक्षा में थी। तथापि जिनके मस्तक पर कफन बँधे हों वे दुस्साहसी हो ही जाते हैं। गेयर ने आधी रात को सोते हुए जनसमूह पर हमला करना श्रेयस्कर समझा। बस्तर को हमेशा अपने वीर माटी पुरुषों पर गर्व रहेगा जो इस आपातकाल में भी सहमें नहीं। लड़ कर जान देंगे की भावना के साथ आधी रात को हुए कायराना-अंग्रेज आक्रमण का उत्तर दिया गया। भोर की पहली किरण के साथ ही युद्ध समाप्त हो सका। अलनार गाँव से विद्रोही पलायन कर गये। गुण्डाधुर एक बार फिर गेयर की पकड़ में नहीं आया। गेयर को गुण्डाधुर के प्रमुख विद्रोही साथी डेबरीधूर को पकड़ने में भी नाकामयाबी मिली। गुप्त सूचना

के आधार पर कुछ घुड़सवारों को नेतानार भेजा गया। एक सिपाही डेबरीधुर की झोपड़ी के भीतर घुसा किंतु आहट से सचेत हो चुके इस विद्रोही ने बिजली की फुर्ती के साथ हमला कर उस की हत्या कर दी। इसके बाद डेबरीधुर अँधेरे का फायदा उठा कर जंगल में गायब हो गया और सिपाही असहाय से देखते रह गये थे। गेयर ने गुण्डाधुर को पकड़ने के लिये दस हजार और डेबरीधुर पर पाँच हजार रुपयों के इनाम की घोषणा की थी।

शीघ्र ही गुण्डाधुर ने विद्रोहियों का संगठन पुनर्जीवित कर लिया। नेतानार में ही गोपनीय तरीके से तैयार किया गया सात सौ क्रांतिकारियों का समूह पुनः उस ब्रिटिश सत्ता से टकराने के लिये तत्पर था, जिनके साम्राज्य में सूर्य अस्त नहीं होता है। 25 मार्च 1910 उलनार भाठा के निकट सरकारी सेना का पड़ाव था। गुण्डाधुर को जानकारी दी गयी कि गेयर भी उलनार के इस कैम्प में ठहरा हुआ है। डेबरीधुर, सोनू माझी, मुस्मी हड़मा, मुण्डी कलार, धानू धाकड, बुधरू, बुटलू जैसे राज्य के कोने कोने से आये गुण्डाधुर के विश्वस्त क्रांतिकारी साथियों ने अचानक हमला करने की योजना बनायी।10 विद्रोहियों ने भीषण आक्रमण किया। गेयर के होश उड़ गये। वह चारों ओर से घिरा हुआ था। बाणों की बैछारों से घायल होते उसके सैनिकों में भगदड़ मच गयी। सैनिकों के पास हमले का प्रत्युत्तर देने का समय नहीं था। गेयर जानता था कि यदि वह पकड़ लिया गया तो विद्रोही जीवित नहीं छोडेंगे। बुरी तरह अपमानित महसूस करता हुआ वह युद्धभूमि से पलायन कर गया। एक घंटे भी सरकारी सेना विद्रोहियों के सामने नहीं टिक सकी और भाग खड़ी हुई। उलनार भाठा पर अब गुण्डाधुर के विजयी वीर अपने हथियारों को लहराते उत्सव मना रहे थे। नगाडों ने आसमान गुंजायित कर दिया। मुरियाराज की कल्पना ने फिर पंख पहन लिये।[13]

इस विजयोन्माद में सबसे प्रसन्न सोनू माझी ही लग रहा था। कोई संदेह भी नहीं कर सकता था कि उनका यह साथी अंग्रेजों से मिल गया है। महीने भर बाद मिली इस बड़ी जीत से सभी विद्रोही उत्साहित थे। सोनू माझी ने स्वयं आगे बढ़ कर शराब परोसी। सभी ने छक कर शराब और लाँदा पिया। रात गहराती जा रही थी। निद्रा और नशा विद्रोही दल पर हावी होने लगा। सोनू माझी दबे पाँव बाहर निकला। वह जानता था कि इस समय गेयर कहाँ हो सकता है। उलनार से लगभग तीन किलोमीटर दूर एक खुली सी जगह पर गेयर सैन्यदल को एकत्रित करने में लगा था। उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह दि ब्रेटन से क्या कहेगा? उसे इस अपमानजनक पराजय का कोई स्पष्टीकरण गढ़ते नहीं बन रहा था। सोनू माझी को सामने देख कर तिनके को सहारा मिलता प्रतीत हुआ। सोनू माझी के यब बताते ही कि विद्रोही इस समय अचेत अवस्था में हैं तथा यही उनपर आक्रमण करने का सही समय है, गेयर को अपनी कायरता दिखाने का भरपूर मौका मिल गया। पौ फटने में अभी देर थी। गेयर ने संगठित आक्रमण किया। सोनू माझी आगे आगे चल कर मार्गदर्शन कर रहा था। गोलियों की आवाज ने अचेत गुण्डाधुर में चेतना का संचार किया। वह सँभला और आवाजें दे-दे कर विद्रोहीदल को सचेत करने लगा।[14] नशा हर एक पर हावी था। कुछ अर्ध-अचेत विद्रोहियों में हलचल हुई भी किंतु उनमें धनुष बाण को उठाने की ताकत शेष नहीं थी। हर बीतते पल के साथ गेयर

के सैनिक कदमताल करते हुए नजदीक आ रहे थे। गुण्डाधुर ने कमर में अपनी तलवार खोंसी और भारी मन तथा कदमों से घने जंगलों की ओर बढ़ गया। वह जानता था कि उसके पकड़े जाने से यह महान भूमकाल समाप्त हो जायेगा। अभी उम्मीद तो शेष है।

सरकारी स्कूल, जंगल नाका, पुलिस थाना आदि जलाकर नष्ट कर दिया गया। जो भी प्रताड़ित करने वाला व्यक्ति (शासकीय कर्मचारी हो या अन्य) कोई भी हो, जहां दिखा वहीं मार दिया गया। यहां तक पटवारी और शिक्षक भी नहीं बख्शे गये।

गुंडाधुर एवं उनके साथी विद्रोहियों द्वारा की जा रही उपद्रवी गतिविधियों की सूचना अंग्रेज अधिकारियों को दी गई तो अंग्रेजों सैनिक टुकड़ी के साथ कप्तान गेयर को भेजा ताकि राजा रुद्रप्रताप देव और दीवान बैजनाथ पंडा को मदद की जा सके।

सभी ने मिलकर वनवासियों को शांत करने हेतु नीतियां बनाई, 15 प्रमुख क्रांतिकारी नेता गिरफ्तार कर लिए गये। लेकिन गुंडाधुर को अंग्रेज सैनिक नहीं पकड़ पाये। गुंडाधुर साहसी एवं कुशल रणनीतिकार है, अंग्रेजों को यह आभास हो गया था।

गेयर ने बस्तर माटी का कसम खाकर छल करने का प्रयास किया ताकि गुंडाधुर और उनके विश्वसनीय साथियों को पकड़ सके। वे अपने छल कपट में कुछ सफल भी हुए। नेतानार में विद्रोहियों की भीड़ इकट्ठी हो गई थी। सेना ने उन पर आक्रमण कर दिया था। भारी संख्या में विद्रोही मारे गये। बहुत से विद्रोही घायल हो गये।[15]

कोई विरोध या प्रत्याक्रमण न होने के बाद भी क्रोध से भरे गेयर ने देखते ही गोली मार देने के आदेश दिये थे। सुबह 21 लाशें माटी में शहीद होने के गर्व के साथ पड़ी हुई थी। डेबरीधूर और अनेक प्रमुख क्रांतिकारी पकड़ लिये गये। नगाड़ा पीट पीट कर जगदलपुर शहर और आस पास के गाँवों में डेबरीधूर के पकड़े जाने की मुनादी की गयी। उस पर कोई मुकदमा नहीं चलाया गया और कोई सुनवायी भी नहीं। नगर के बीचों-बीच इमली के पेड़ में डेबरीधूर और माड़िया माझी को लटका कर फाँसी दी गयी। नम आँखों से बस्तर की माटी ने अपने वीर सपूतों की शहादत को नमन किया और फिर आत्मसात कर लिया।

बहरहाल, बस्तर के इस माटीपुत्र को तरजीह देने के लिए राज्य सरकार खेल प्रतिभाओं को उनके नाम पर पुरस्कृत करती है। तीरंदाजी के क्षेत्र में उत्कृष्ट प्रदर्शन के लिए खिलाड़ियों को शहीद गुंडाधुर अवार्ड से सम्मानित किया जाता है, लेकिन इसके बावजूद शहीद गुंडाधुर को जो दर्जा मिलना चाहिए, उसकी दरकार आज भी है। कोशिश यही होनी चाहिए कि ऐसे वीर क्रांतिकारियों के बलिदान को अपनी पहचान के लिए संघर्ष न करना पड़े।

संदर्भ सूची

1. दुबे, के. सी., प्रदेश का पहला स्वाधीनता सेनानी गुंडाधुर, मध्य प्रदेश सन्देश, 25 अगस्त 1990, पृ. 14
2. शुक्ला, हीरालाल, बस्तर का मुक्ति संग्राम, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी, 1995, पृ. 14
3. बेहार, राम कुमार, जन नायक गुंडाधुर, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी, 1995, पृ. 8
4. सक्सेना, सुधीर, भूमकाल (बस्तर के भूचाल 1910), मध्य प्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी,

1996, पृ. 16
5. शुक्ला, हीरालाल, पूर्वोक्त, पृ. 169
6. उपरोक्त, पृ. 170
7. बेहार, राम कुमार, बस्तर का आदिवासी संघर्ष, शोध प्रबंध, पृ. 112
8. जगदलपुरी, लाला, बस्तर इतिहास एवं संस्कृति, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी, 1994, पृ. 13
9. बेहार, राम कुमार, गुंडाधुर बस्तर का जन नायक, छत्तीसगढ़ शोध संस्थान, रायपुर, 2002, पृ. 6
10. सक्सेना, सुधीर, पूर्वोक्त, पृ. 15
11. बेहार, राम कुमार, गुंडाधुर बस्तर का जन नायक, छत्तीसगढ़ शोध संस्थान, रायपुर, 2002, पृ. 6
12. उपरोक्त, पृ. 7
13. सक्सेना, सुधीर, पूर्वोक्त, पृ. 16
14. शुक्ला, हीरालाल, पूर्वोक्त, पृ. 170
15. दुबे, के. सी., पूर्वोक्त, पृ. 17

वनांचल विद्रोह

✍ ??????????????
??????????

भारत में इतिहास की दृष्टी से देखें तो 1770 में तिलक मांझी का सशस्त्र आन्दोलन भारत में अंग्रेजों के खिलाफ पहला ऐसे सैन्य आयोजन था जिसमें अंग्रेजों को स्थानीय जनता से समझौता करना पड़ा। आधुनिक भारत में इतिहासकारों ने सन् 1857 की क्रान्ति को प्रथम स्वतंत्रता संग्राम बताया लेकिन वास्तविकता में सन् 1857 से करीब नौ दशक पूर्व वनांचलों के लोगों ने अंग्रेजों की नीति का समझा और अपने आर्थिक और जीवन यापन के साधनों पर उनके द्वारा किए जा रहे अनाधिकृत कब्जे के विरोध में शस्त्र उठाए। अंग्रेज विरोधी आन्दोलन के दो भाग हैं। पहला सामाजिक और संस्कृति विकृत को रोकना और भारत की अर्थव्यवस्था को समाप्त करने के षड्यंत्र के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष करना। यह आन्दोलन समान्यतौर पर जनजातीय आन्दोलन कहकर इतिहास के आवरण में ढंक दिए गए। वहीं दूसरा अंग्रेज विरोधी आन्दोलन सत्ता की प्राप्त का आन्दोलन था, जो कांग्रेस और कांग्रेस जैसे अन्य संगठनों ने चलाया और वह इतिहास में भारतीय स्वतंत्रता का आन्दोलन कहलाने लगा। जबकि जन आन्दोलन वे थे जो ग्रामीण क्षेत्रों से उठे और उन्हें कमजोर करने का प्रयास नगरों में बैठे भद्रलोक ने किया और उनका साथ नहीं दिया। इसके अपराधी वे सभी हैं जो ब्रिटिश क्राउन के नियंत्रण में उत्तरदायी शासन की चाह रखते थे या फिर 1930 के बाद पूर्ण स्वराज्य का नारा देने लगे थे। स्वतंत्रता आन्दोलन में वनांचल की भूमिका समझने के लिए उसकी पृष्ठभूमि को समझना जरूरी है। यह सच है कि वनांचल के लोगों ने स्थानीय परिस्थितियों से तस्त्र हो शस्त्र उठाए और स्वयं अपने स्तर पर ही विरोध किया लेकिन 1857 से पूर्व 1822-39 के बीच पश्चिमी घाट में रामोसी क्रान्ति के समय ही पूरे भारत में अशांति थी। कहीं न कहीं कुछ न कुछ विरोध खड़ा था। गुजरात के डांग जिले से लेकर बंगाल के चौबीस परगना तक देश के 70 प्रतिशत जनजातीय लोग रहते हैं। पूर्वोत्तर के सात राज्यों-मेघालय, मणिपुर, मिजोरम, असम, अरूणाचल प्रदेश, नागालैण्ड और त्रिपुरा में आदिवासियों का बाहुल्य है। यही कारण है कि पूर्वोत्तर के सीमावर्ती प्रदेश बिहार और झारखण्ड जनजाति आन्दोलन के प्रमुख केन्द्र रहे हैं। जनजातीय लोग पूर्वोत्तर के सात राज्यों के अलावा झारखण्ड, बिहार, पश्चिमी बंगाल,

उड़ीसा, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश एवं राजस्थान में बसे हुए हैं।

मेघालय में 16 तरह की जनजातियां हैं और उनका धर्मपरिर्वतन किया जा चुका है। त्रिपुरा में 19 जनजातियां हैं जो ईसाई, बौद्ध और हिन्दू धर्म को मानते हैं। छत्तीसगढ़ के विलासपुर संभाग में जेवरा गोंड के अलावा सरगुजिया, रतनपुरिया, मटकोड़वा, ध्रुव तथा राजगोंड में सगा समाज है। अगर हम यह कहे कि भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को आधार वनांचल ने खड़ा किया, तो अतिश्योक्ति नहीं होगी।

महात्मा गांधी और डॉ. भीमराव अम्बेडकर जैसे विदेशों से पढ़कर आए भारतीय अंग्रेजी शासन से भारत को मुक्त करना चाहते थे। वे अंग्रेजों से राजनीतिक सत्ता की मुक्ति चाहते थे। इसलिए कहते थे कि अंग्रेज भारतीयों के हाथों में सत्ता सौंप कर चले जाएं। महात्मा गांधी राजनीतिक सत्ता का हस्तान्तरण चाहते थे। उनका उद्देश्य राजनीतिक सत्ता प्राप्त करना था। सामाजिक आजादी की लड़ाई वनांचल के लोगों ने लड़ी। हमेश से स्ववित्त पोषित रहे वनांचल के लिए आर्थिक स्वतंत्रता भी उतनी ही महत्वपूर्ण थी, जितनी सामाजिक और राजनीतिक स्वतंत्रता। अंग्रेजी पद्धति के कर नियम और 1870 के अपराधी जति कानून ने इनके जीवन का नर्क बना दिया था। एक बार कानून के चंगुल में आए नहीं कि साहूकार के कब्जे में जमीन और परिवार बैगार के लिए मजबूर। अंततः साहूकार जमींदार की मदद से आदिवासियों की जमीन पर जबरन कब्जा कर लेते और जमीन सीधे अंग्रेजी कानून के हाथ में। इस प्रकार भारत को आर्थिक गुलाम बनाया गया। दो चार मामले जो बड़े जमींदारों के अदालतों में पहुंचे वे इतिहास के हिस्सा हैं लेकिन वनांचल की छोटी जोतों और जन, जंगल जमीन पर हो रहे अंग्रेजी कब्जे पर कोई आज तक नहीं बोला।

महात्मा गांधी ने सिर्फ अंग्रेजों के खिलाफ आन्दोलन किया था। महात्मा गांधी ने राजा-महाराजाओं, सामंतों और जमींदारों के अन्याय और अत्याचारों की कभी खिलाफत नहीं की। उनके खिलाफ कभी नहीं बोले। वे उनके समर्थक बने रहे। साहूकारों के शोषण के संबंध में भी उनकी यही नीति रही। अंग्रेजों ने भारतीय जनता पर सीधा शासन नहीं किया। उन्होंने राजा-महाराजाओं, सामंतों और जमींदारों के माध्यम से शासन चलाया। ब्रिटिश शासकों को कोई कानून भारतीय जनता पर लागू करवाना होता तो इन्हीं के मार्फत लागू करवाते थे। राजस्व वसूली भी राजा-महाराजाओं और जमींदारों के माध्यम से ही करते थे। इसलिए वनांचल के लोगों की सीधी लड़ाई जमींदारों और सामंतों से होती थी, न की अंग्रेजों से और अपने ही अपनों के खिलाफ खड़े दिखाई दने लगे। वनांचल के लोग जब जमींदारों और राजा-महाराजाओं के नियंत्रण से बाहर हो जाते थे तब वे अंग्रेजी हुकूमत से मदद मांगते थे। उनकी मदद के लिए अंग्रेज अपनी सेना भेजते थे। ऐसी स्थिति में वनांचल को अंग्रेजी सेना और जमींदारों से सीधा युद्ध करना पड़ता था। ऐसी स्थिति में वनांचल की स्वायत्तता और स्वतंत्रता का प्रत्येक युद्ध अंग्रेजी शासन के खिलाफ था, जिसके टूलकिट सामंतों और साहूकारों बन गए। वनांचल का आन्दोलन अधिक व्यापक और विस्तार लिए था, अंग्रेजों के भारत से जाने का मूल कारण वनांचलों में अंग्रेजों के खिलाफ उठ रहे आक्रोश थे। जिसके

राजस्थान के उदाहरण मानगढ़ धाम, एकी आन्दोलन के साथ ही बिजौलिया और बेगूं का किसान आन्दोलन भी था। वहीं गुजरात में नीमड़ी का आन्दोलन और बनासकांठा की वनवासी क्रांति भी थी। व

वनांचल को स्वतंत्रता आन्दोलनों की भारी कीमत चुकानी पड़ी। अंग्रेजों के पास भारी संख्या में सुसज्जित सेना थी। आधुनिक हथियार-बंदूकें, तोपें, गोला और बारूद था। इनके मुकाबले में वनांचल के लोगों के पास युद्ध के परम्परागत साधन तीन-कमान, भाले, फरसे और गण्डासे थे। इसलिए हर आन्दोलन में वनांचल को जान-माल की भारी क्षति उठानी पड़ी। सन् 1855 में संथाल (झारखण्ड) के वीर योद्धा सिद्दू और कान्हू का विद्रोह हुआ। इसमें 30-35 हजार वनांचल के लोगों ने भाग लिया। आन्दोलन ने हिंसक रूप ले लिया। अनेक अंग्रेज सैनिक और अधिकारी मारे गए। अंत में पूरे क्षेत्र को सेना के सुपुर्द कर दिया गया, मार्शल लॉ लागू कर दिया गया। देखते ही गोली मारने के आदेश सेना को दे दिए गए, कत्ले आम हुआ। इसमें 10 हजार वनवासी मारे गए। अंग्रेजी गजट इन आंकड़ों की पुष्टि करते हैं वहीं इतिहासकार रमणिका गुप्ता व माता प्रसाद इन्हें सत्य मानते हैं। इसी तरह सन् 1913 में मानगढ़ में हुए आन्दोलन में भी 1500 वनवासी शहीद हुए थे।

भारत की सबसे पहली वनांचल क्रांति सन् 1770 में संथाल परगना में प्रारम्भ किया। दो वीरों तिलका और मांझी इसका नेतृत्व किया और यह क्रांति सन् 1790 तक चली। इसे 'दामिन विद्रोह' कहते हैं। तिलका और मांझी की गतिविधियों से अंग्रेजी सेना परेशान हो चुकी थी। इन्हें पकड़ने के लिए सेना भेजी गई। तिलका को इसकी भनक लग चुकी थी। यह देखने के लिए कि अंग्रेज सेना कहा तक पहुंची है, तिलका ताड़ के ऊंचे पेड़ पर चढ़ गया। संयोग से अंग्रेजी सेना पास की झाड़ियों में छुपी हुई थी। उसका नेतृत्व मि. क्लीववलैण्ड कर रहे थे। उसने तिलका को पेड़ पर चढ़ते हुए देख लिया था। वह घोड़े पर सवार होकर पेड़ के पास पहुंचा। सेना ने भी पेड़ के चारों तरफ घेरा डाल दिया था। क्लीवलैण्ड ने तिलका को ललकारा और पेड़ के नीचे उतर कर आत्म समर्पण के लिए कहा। तिलका ने क्लीवलैण्ड पर एक तीर चलाया जो उसकी छाती में जाकर लगा। क्लीवलैण्ड नीचे गिर पड़ा, छटपटाने लगा। सेना उसे संभालने के लिए भागी। इस बीच तिलका फुर्ती से पेड़ से नीचे उतरा और जंगल में गायब हो गया। अंग्रेजी सेना ने तिलका को पकड़ने के लिए छापामार युद्ध का सहारा किया। अंत में अंग्रेज सेना तिलका को गिरफ्तार करने में सफल हो गई। अपनी हानि और बदला लेने के लिए तिलका को अंग्रेजों ने पेड़ से लटकाकर फांसी दे दी। अपने प्रदेश की स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ते हुए तिलका वीरगति प्राप्त योद्धा था। तिलका को स्वतंत्रता आन्दोलन का पहला हुतात्मा माना जाना चाहिए लेकिन भारतीय इतिहासकारों ने सन् 1857 की क्रान्ति में शहीद हुए मंगल पाण्डे को स्वतंत्रता संग्राम का पहला हुतात्मा घोषित कर दिया।

भारत का सही इतिहास कभी लिखा ही नहीं गया। विडम्बना है कि वनांचल की क्रांति को विद्रोह की श्रेणी में लाकर इसे सदैव इतिहास से बाहर रखा गया। उनके बड़े से बड़े त्याग, बलिदान और शौर्य गाथाओं का इतिहास में उल्लेख तक नहीं किया गया। सन् 1780 से

सन् 1857 तक आदिवासियों ने अनेकों स्वतंत्रता आन्दोलन किए। सन् 1780 का "दामिन विद्रोह" जो तिलका मांझी ने चलाया, सन् 1855 का "सिहू कान्हू क्रांति", सन् 1828 से 1832 तक बुधू भगत द्वारा चलाया गया "लरका आन्दोलन" बहुत प्रसिद्ध हैं। इतिहास में इन आन्दोलनों का कहीं जिक्र तक नहीं है। छत्तीसगढ़ का प्रथम हुतात्मा वीर नारायण सिंह 1857 में शहीद हुआ। मध्य प्रदेश के नीमाड़ का पहला विद्रोही भील तांतिया उर्फ टंटिया मामा सन् 1888 में वीरगति हुआ। इसी तरह वनांचल के युग पुरूष बिरसा मुण्डा सन् 1900 में वीरगति हुआ, जेल में ही उसकी मृत्यु हो गई। सन् 1913 में हुए मानगढ़ आन्दोलन के नायक गोविन्द गुरू का भी इतिहास में कहीं उल्लेख तक नहीं है। इतिहासकारों ने इनके इतिहास को विकृत और विलुप्त करने में अपनी अहम भूमिका निभाई। वनांचल के आन्दोलनकारियों की छवि खराब करने के लिए वीर नारायणसिंह, टंटिया मामा और बिरसा मुण्डा को डकैत और लुटेरा बताया, जबकि वे आदिवासियों में बहुत लोकप्रिय रहे हैं और स्वतंत्रता आन्दोलनों का सफल नेतृत्व किया है। वनांचल में 1870 से 1947 के बीच कुल 70 से अधिक क्रांतियां हुई।

वनांचल के अन्य प्रमुख आन्दोलन

मुंडा (उलगुलान) विद्रोह (1880-1900) - नेतृत्व बिरसा मुंडा

रामोसी विद्रोह (1839-1862) - नेतृत्व अल्लूरी सीताराम राजू

युआन-जुआंग विद्रोह क्योझर (झारखंड) - 1867 नेतृत्व - समाज द्वारा

युआन-जुआंग विद्रोह क्योझर (झारखंड) - 1891 नेतृत्व - धरणी नायक

ताना भगत आन्दोलन (1914-20) - नेतृत्व - जतरा उंराव उर्फ ताना भगत

मुड़ियों विद्रोह (1910) - बस्तर - नेतृत्व समाज की पंचायत द्वारा

खोंड विद्रोह उड़ीसा दसपल्ला रियासत (1914) - नेतृत्व समाज की पंचायत द्वारा

भगत आन्दोलन मानगढ़, डूंगरपुर (1913) - नेतृत्व गोविन्द गिरी

एकी आन्दोलन, उदयपुर (1921-22) - नेतृत्व मोतिलाल तेजावत

एक अनुमान के अनुसार, 70 वर्षों में 1778 से 1848 तक 70 से अधिक जनजातीय विद्रोह हुए। ये विद्रोह विभिन्न स्तरों के उपनिवेश-विरोधी विद्रोह थे।

कोल विद्रोह, छोटा नागपुर (120-36) - नेतृत्व - कोल समाज का

अहोम विद्रोह, असम (1828-30) - नेतृत्व -गोमधर कुंवर

खासी विद्रोह, (1833) - नेतृत्व - ननक्लों के राजा तीर्थ सिंह

भील विद्रोह, नीमाड़, मालवा, मेवाड़ और वागड़ (1812-19, 1825, 831 व 1896) - नेतृत्व - समाज और 1888 में टांटिया भील द्वारा

चुआर विद्रोह मेदिनी पुर जिले (बंगाल) (1768) - इनका नेतृत्व दल भूमि कैलापाल, ढोल्का तथा बाराभूम के राजाओं ने मिलकर किया था।

मणिपुर/नागा विद्रोह (1931) - नेतृत्व रोंगमई जदोनांग और रानी गेडिनल्यू

हल्बा विद्रोह छत्तीसगढ़ (1774 ई.) - नेतृत्व- अजमेर सिंह

भोपालपट्टनम संघर्ष, छत्तीसगढ़ (1795 ई.) - नेतृत्व- आदिवासियों द्वारा

परलकोट विद्रोह, छत्तीसगढ़ (1825 ई.) - नेतृत्व- गेंदसिंह (फांसी 20 जनवरी 1825)
तारापुर विद्रोह, छत्तीसगढ़ (1842 ई.) - नेतृत्व- दलगंजन सिंह
मेरिया विद्रोह, छत्तीसगढ़ (1842 ई.) - नेतृत्व- हिडमा मांझी
लिंगागिरि विद्रोह, छत्तीसगढ़ (1856 ई.) - नेतृत्व- धुर्वाराव माडिया (दूसरी वीरगति)
कोई विद्रोह, छत्तीसगढ़ (1859 ई.) - नेतृत्व- नांगूल दोरला
मुरिया विद्रोह, छत्तीसगढ़ (1876 ई.) - नेतृत्व- झाड़ा सिरहा
महान भूमकाल विद्रोह, छत्तीसगढ़ (1910 ई.) - नेतृत्त्व- गुंडाधुर (नेतानार के जमींदार)

भिलाला जनजाति समाज के धार्मिक अनुष्ठानो और कर्मकांडो में सनातनी तत्व

✍ डॉ. रेखा नागर
सहायक प्राध्यापक (हिंदी)
भेरुलाल पाटीदार, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अम्बेडकर नगर (महू) इंदौर म.प्र.

आदिवासी शब्द अपने आप मे असीम, अनुपम और अदभुत इतिहास संजोए हुए हैं।इनकी अपनी जीवनशैली, विशिष्टताए और अपने संस्कार है।यहाँ पर लोक संस्कृति आज भी भीनी खूशबू की तरह जनमानस के मन में बसती है।इन्ही विशेषताओं का निर्वहन करके अपने एक अलग पहचान बनाती है भिलाला जनजाति।इसकी बसाहट पश्चिमी मप्र के अली राजपुर,बड़वानी,धार,खण्डवा,खरगोन,आदि जिलों में है।यह भील की उपजाति के रूप में जानी जाती हैं।वस्तुतः जनजातियों के लिए केवल दो प्रकार की धारणाओं को परिभाषित किया जाता रहा है,कि एक तो वे केवल प्रकृति प्रेमी है और दूसरे वे आधुनिक सभ्यता और संस्कृति से दूर है।इसी कारण उनके उसी पक्ष को ज्यादा उभारा गया है जो युवागृह,घोटुल, भगोरिया, लमझेना जैसे उन्मुक्त रीति-रिवाजो और दैहिक खुलापन से जुड़े थे, लेकिन उन मूल्यों को उभारने की कोशिश नही की जो प्रकृति से जुड़ी ज्ञान परम्परा, वन्य जीव-जंतुओं से सह अस्तित्व तथा निःस्वार्थ प्रेम, स्वाभाविक भोलापन तथा प्रेमविवाह और पुनर्विवाह जैसे आधुनिकतम सामाजिक मूल्यों व सरोकारों से जुड़े हुए थे।इनकी आकर्षक और बहुरंगी पोशाकों,आभूषणों,उनके लोकगीत, संगीत तथा नृत्य, वाद्ययंत्रोआदि को आनन्द और कौतुहल की दृष्टि से तो देखा किंतु उनके सदियों से आ रहे पारम्परिकJजीवन को कथित सभ्यता के मापदंड में आधुनिक सभ्यता की दृष्टि से पिछड़ा औरअसभ्य माना।

परिणामस्वरूप पाश्चात्य विचारकों, समाजशास्त्रियोतथा मानववादीयोको उन पर तरस आता और उन्हें ”सभ्य” व आधुनिक बनाने के अभियानों की होड़ लग गई।और यह भी सत्य है कि उन्हें सनातन हिन्दू धर्म से अलग करने की कोशिशें इसी अभियान का हिस्सा है।लेकिन यहाँ पर यह उल्लेखित करना आवश्यक हो जाता है कि जनजाति समाज के प्रत्येक समुदायअथवा उपजातियों के सभी उत्सवों और धार्मिक अनुष्ठानों आदि में कमोबेश सनातन परंपरा की विशेषताओ और मान्यताओं का से प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

प्रस्तुत शोध आलेख में इसी बात ध्यानाकर्षित किया गया है कि पश्चिमी म.प्र.की भिलाला जनजाति के लोग किस प्रकार जन्म से मृत्यु तक के संस्कारों और धार्मिक क्रियाकलापों में

सनातन परंपरा का निर्वहन कई वर्षों से करते चले आ रहे हैं।सनातनी परम्परा की विशेषताओं का प्रभाव इनके गीत, नृत्य, पूजा-पध्दति में दृष्टिगोचर होता है।

भिलाला जनजाति के प्रमुख पर्व, त्यौहार:-

1.जीरोति या दिवासा पर्व:-यह पर्व सावन माह की अमावस्या को सम्पूर्ण भिलाला समाज अच्छी नई फसल ओर अच्छी बारिश की मनोकामना के निमित्त मनाया जाता है।इस दिन भिलाला समाज के पुरुष एवं महिलाएं सुबह उठकर निमाड़ की जीवनदायिनी नर्मदा नदी (नरबदा माइ) में स्नान व पूजा अर्चना के बाद घर आकर महिलाएं मुख्य द्वार के दोनों ओर जिरोती माता की पुतलियां(चित्र) गेरू मिट्टी से बनाती है । एक और तीन तथा दूसरी ओर दो पुतलियां बना कर उनके पास प्रतीक स्वरूप घोड़े का चित्र और ऊपर दोनो किनारों पर सूर्य और चंद्र बना कर उन्हें रंगों से सजाती है।दोपहर पश्चात संजोरी, पापड़ी, और चूरमा बना कर शाम के समय जिरोती मामा की हल्दी कुमकुम अक्षत से पूजा अर्चना करने के बाद भोग लगाने के बाद सभी भोजन करते हैं।इस अवसर पर महिलाएं निमाड़ी बोली में माता के गीत गाकर अच्छी फसल एवम घर के मवेशियों और परिवारजनों की खुशहाली की कामना करती है। कर

गीत:-घर म आवो जीरोति माई
जीमो चुटो जीरोति माई
अच्ची फसल को दीजो वरदान
धन धान के भरो भण्डार
घर का बालक भूका नी रय
गाय ढोर सब चारो पाव
पाणी वर्सSS झम झम आज
घर म आवो जीरोति माइ----

इस प्रकार हम देखते है कि निमाड़ के भिलालाओ में मनाए जाने वाले जीरोति पर्व को ही सनातन परंपरा में हरियाली अमावस्या के रूप में मनाते हैं।इसका उद्देश्य भी अच्छी बारिश और सुख समृद्धि के लिए पूजा अर्चना करना है

2 पलासला त्यौहार :-पलासला नामक पर्व निमाड़ अंचल में निवासरत भिलाला जनजाति की एक ऐसी पूजा पध्दति है,खेतों की बुआई (बोवनी) से पहले ज्येष्ठ माह की अमावस्या तिथि से प्रारंभ हो कर पाँच दिनों तक चलता है।अमावस्या के दिन भिलाला लोग अपने घर के पूजास्थल में पाँच टोकरियों में पाँच

पाँच अलग अलग अनाज बौते हैजो खरीब की फसल के होते हैं जैसे मक्का, ज्वार, बाजरा, मूँग, तुवर आदि।इसकी सम्पूर्ण विधि कुंवारी कन्याओं केद्वारा सम्पन्न की जाती।जिस प्रकार सनातन धर्म में विभिन्न पेड़ पौधों जैसे आंवला, तुलसी, बरगद, पीपल, आदि की पूजा का विधान है वैसे ही पलासला पर्व में पलास के वृक्ष की पूजा की जाती है।पलास के पौधे के ऊपर मण्डप बना कर उसी के पत्तो से मंडप तैयार किया जाता है।पाँच दिवसीय इस

पर्व में सुबह और शाम दोनो समय गाँव की कुंवारी कन्याए गाँव के पास किसी खेत में या नदी किनारे जंहा पलास का मंडप बना होता है वहाँ एकत्रित होकर हल्दी से अपनी अपनी सातियां (मांडणा) बनाती है।फिर उसके आप पास आमने सामने पंक्ति बना कर लोकगीत गाते हुये नृत्य करती इसमें पलास के पेड़ को भगवान इंद्र का प्रतीक मानाकर उन्हें प्रसन्न करने के लिए बालक बालिकाएं टोली बनाकर पलास के पत्तो को अपने अपने सिर पर रखकर घर घर जाकर नेग माँगते और मेधराज के लिए यह पंक्ति गाते जाते।

"मेघराजा पाणी दे,पाणी दे गुड़धाणी दे

अब की बरस तु जल्दी आ इंदर राजा पाणी ला"

इस पर्व की पूजा पद्दति से यह स्पष्ट होता है कि इसमें हल्दी, कुमकुमके द्वारा कलश, जवारे वृक्ष पूजा इंद्र देव आदि की पूजा करते हैं।जो सनातन परंपरा का निर्वहन करते हुए स्पष्ट दिखाई देता है।

3.रक्षाबंधन एवं कृष्णजन्माष्टमी पर्व:-रक्षाबंधन का पर्व जिस प्रकार सम्पूर्ण हिन्दू समाज बड़ी उत्साह से रक्षाबंधन पर्व मनाते हैं ठीक उसी प्रकार समस्त जनजाति समुदाय के समान भिलाला समाज भी इस पर्व को बड़ी उत्साह से मनाते हैं।इतिहास में इसके बहुत सारे उदाहरण देखने को मिलते है। जैसे टंट्या मामा को अंग्रेजों ने रक्षाबंधन के दिन ही षड़यंत्र के तहत गिरफ्तार किया था।जबकि वे अपनी मुहबोली बहन के घर राखी बंधवाने गए थे।ऐसे कई उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है । प्राचीन काल से

जनजाति समाज रक्षाबंधन का पर्व मनाता आ रहा है।

वैसे ही कृष्ण जनमाष्टमी को भी भिलाला समाज गाँव में मण्डप और पालना बांध कर रात भर भजन कीर्तन करते हुए मानते हैं।जन्माष्टमी पर गाया जाने वाला प्रसिद्ध भजन इस प्रकार है।

"मथुरा म जनम लियो, गोकुल म खेलSS

ब्रज म बाँसुरी बजाव कान्हा जी को काई कयनु"

4.डोलग्यारस:कृष्णजन्माष्टमी के बाद आने वाले पर्व डोलग्यारस को भी भिलाला समाज बड़ी धूमधाम से मनाता है।इस दिन भगवान कृष्ण की डोली सजाकर पूरे गाँव में ढोल मांदल के साथ जयकारो की गूंज और भजन कीर्तन के साथ शोभायात्रा निकाली जाती है।खेत मे पकी नई फसल जैसे मूँग, चावला, भुट्टे खीरा ककड़ी आदि डोली में विराजमान बालकृष्ण को चढ़ाए जाते इसके बाद ही भिलाला जन समाज फलियां, भुट्टे आदि खाना शुरू करते हैं।ओर सभी छोटी बड़ी बहने भाईयो के साथ श्रीकृष्ण को भी अपना भाई मानकर राखी बांधती है।भिलाला समाज में रक्षाबंधन का त्यौहार पूर्णिमा से लेकर डोल ग्यारस तक मनाया जाता है।

5.गणेश चतुर्थी:-भिलाला जनजाति के सभी गाँवो में गणेशजी की प्रतिमा सामुहिक रूप से गाँव के चौक में झांकी बनाकर विधि विधान से स्थापित की जाती है।और दस दिन तक सात्विक आहार का पालन करते हुए।आनंद चतुर्दशी के दिन पूरे गाँव वाले गाजेबाजे के साथ

धूमधाम से नदी या तालाब में विसर्जित करने जाते है। इस प्रकार पूरी तरह से हिन्दू धर्म का निर्वहन करते हैं।

6.नवरात्रि एवं गणगौर (चैत्र नवरात्रि):- गरबा महोत्सव और चैत्र नवरात्रि अर्थात गणगौर पर्व भिलाला जनजाति में सम्पूर्ण त्यौहार में धार्मिक अनुष्ठान की दृष्टि से सबसे पवित्र माने जाते हैं।इन दिनों में सभी अपने घरों का कोना कोना साफ करके उनकी लिपाई पुताई करने के बाद ही गरबा या गणगौर माता जवारे के साथ स्थापित करते हैं।नवरात्रि में गरबा गरबी और गणगौर पर्व पर गणगौर माता के साथ धनियर राजा की पूजार्चना करके निमाड़ी बोली में भजन और लोकगीत गाकर बहने और माताएं देर रात तक नृत्य करती हैं।भिलाला जनजाति में माता की मूर्ति के स्थान पर मुट्टी के गरबा गरबी को ही पूजा जाता है।और गणगौर में मुखोटा लगाकर लकड़ी से बने सुंदर रथ सजाए जाते हैं।इस प्रकार माता जी की आराधना भिलाला जनजाति के लोग पूरी आस्था और समर्पण के साथ सामुहिक रूप से करते हैं।इन्ही नव दिनों में बड़वा–बड़वी,गाँव पुजारा ,गाँव ड़हाला (गाँव पुरोहित)सम्पूर्णरूप से पवित्रता का पालन करते हुए रात रातभर सुनसान जगह पर जाकर दैवीय शक्ति को अपनी देह में वारा के रूप अनुभूति करके अपने मंत्रो(विद्या)को पक्का करते हैं। नवे दिन गरबा गरबी और जवारों को विसर्जित(ठंडा) करते है।

गणगौर लोकगीत 1.“जवना ज्वारा न केशर न क्यारा
जव म्हारा लयरा वो लेय$$
धनियर जी घर वाया(बौया) रनू बाई न सींच्या
जव म्हारा ---------------------
2.ब्रह्माजी घर वाया,सईतबाई न सींच्या ।
जव म्हारा--------------------------------
3.विष्णु घर वाया, लछमी जी न सींच्या
जव म्हारा--------------
4.चंद्रराजा न वाया,रोयणबाई सिंच्या
जव म्हारा------------------------------–--

इसी प्रकार घर के सदस्यों भाई- भाभी, जीजी -जीजा आदि के नाम लिए जाते हैं।

7.दशहरा एवं दीपावली :-नवरात्रि दिनों में भिलाला समाज की महिलाएं एवम पुरूष मांस मदिरा का सेवन नही करते हैं।दशहरे के दिन सुबह नहाने के बाद नए कपड़े पहनकर नींबू सिंदूर और नारियल आदि चढ़ाने के बाद मुर्गे या बकरे की बलि देकर सहभोज करते हैं।दिवाली का पर्व भी पाँच दिनों तक अन्य समाजो की तरह विधी विधान और धूमधाम से मनाते हैं।अधिकतर समाजजन धनतेरस के दिन ही लक्ष्मीमाता की भी पूजा करते हैं। चौदस के दिन खेतो में काम नहीं करते हैं बेल और गायों को सजाने के लिए सामग्री और रंग लाते हैं।और गाय बेल को नहलाते है। अमावस्या की रात महिलाएं पकवान तैयार करती है और पुरूष गाय बैलो को सजाकर तैयार करते हैं।पड़वा की सुबह पूरे गाँववाले एक स्थान पर अपने

अपने गाय बैलो के साथ एकत्रित होकर गवरी दौड़ाते है।सभी गाँव वाले पटाखों के साथ उनका स्वागत करते हैं।इसके बाद सभी समाजजन एक दूसरे के घर टोलियां बना कर बनाये हुए व्यंजनों, मिस्ठान आदि का लुप्त उठाकर एक दूसरे से गले मिलकर बधाई देते हैं।इस प्रकार अपने पारम्परिक रूप में दीवाली का पर्व मनाते है।

8.गाथा पूजन:-भिलाला समाज का कोई प्रसिद्ध व्यक्ति, स्वतन्त्रता सेनानी या समाजसेवी,गाँव पटेल आदि की मृत्यु पश्चात उनकी याद में गाथा बाबा (मूर्ति) की स्थापना पास के बड़े कस्बे में की जाती है। दिवाली की अमावस्या के तेरहवे दिन गाँव के वे किसान जिन्होंने अपनी जनने वाली गाय एवं भैस के लिये मन्नत ले रखी होती वे उन जनी हुई गाय और भैस का दूध और घी लेकर मान्धाता (ओम्कारेश्वर) जाते हैं और शिवलिंग पर चढ़ा कर मन्नत पूरी करते हैं, तथा वहाँ से नर्मदा मय्या का जल और प्रसाद लेकर आते हैं और वह जल गाथा बाबा पर चढ़ा कर चौदस की रात गाथा बाबा का श्रंगार कर पूजन करते है उस दिन रातभर भजन कीर्तन करते है ।पूर्णिमा के दिन सुबह से शाम तक पूजा अर्चना एवं मुर्गे तथा बकरे की बली भी दी जाती है। दिनभर मेला लगता है।जिसमे क्षेत्र के सभी समाजजन शामिल होते हैं। इस उत्सव से यह स्पष्ट होता है कि भिलाला समाज शिव को अपना आराध्य देव मानते है और अपने पूर्वजों की पूजा करते हैं जो कि सनातन परंपरा का ही एक हिस्सा है।

9.मकर संक्रांति या लड्डू चौथ:-भिलाला जनजाति समाज मकर संक्रांति त्यौहार के पूर्व पौष मास की चतुर्थी को लड्डू चौथ के रूप मनाता है इस दिन बहन भांजियों को घर बुलाकर लड्डू,चावल,के साथ विशेष व्यंजन के रूप में ज्वार या बाजरे का खीचड़ा खिला कर उपहार दिया जाता है।इस प्रकार लड्डू चौथ के दिन संक्रांति की भांति ही दान दक्षिणा देकर सबको लड्डू खिलाये जाते हैं।इसके साथ ही चौथ माता की पूजा की जाती है।

10.भगोरिया एवं होली पर्व :-पश्चिमी म.प्र.के भील बाहुल्य जिलों में होली के एक सप्ताह पूर्व विश्व प्रसिद्ध मेला भगोरिया पर्व (हाट) बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। इसमें भिलाला जनजाति के युवक युवतियों एवं बच्चे बूढ़े सभी बढ़ चढ़ कर भाग लेते हैं।और होली पर्व ,एवं रंगपंचमी के लिए पूजा तथा त्यौहार मनाने की सामग्री की खरीददारी करते हैं।इसके साथ ही भगोरिया हाट में जनजाति बंधु अपने अपने समूह के साथ ढोल मांदल की थाप पर नृत्य करते हैं।

होलिका दहन के दिन पूरे विधि विधान के साथ सबसे पहले गाँव पुजारा या गाँव पटेल होलिका की पूजा करते हैं।फिर सभी लोग परिक्रमा करते हैं इसके पश्चात होलिका दहन किया जाता है।

होलिका पर्व पर गाया जाना वाला लोकगीत “ओ होली माता थारा डोला (आँख) राता (लाल)

केशवडियो रंग लाई वो...........

2.कान्हो खेल होली संग राधा गौरी केशवडियो रंग लाई ओ

इसी प्रकार गाये जाने वाले सभी फ़ाग गीतों में राधा कृष्ण गोकुल, मथुरा आदि का वर्णन

मिलता मिलता है।इसी के साथ रामनवमी महाशिवरात्रि जैसे सभी पर्व भिलाला जनजाति के लोग अपनी पूर्व से चली आ रही प्राचीन परंपरा के अनुरूप बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाते हैं।सम्पूर्ण निमाड़ के प्रत्येक गाँव में खेड़ापति हनुमान की प्रतिमा या मंदिर विद्यमान है। इसलिए सभी स्थानों पर हनुमान जयंती का उत्सव बड़ी श्रद्धा और भक्तिभाव से मानते हैं।इस दिन अधिकाशं गाँवो में भंडारे के साथ ही सुन्दरकाण्ड का पाठ किया जाता है।अतएव भिलाला जनजाति प्रारंभ से ही अपने धार्मिक क्रियाकलापों में सनातन परंपरा का निर्वहन करती आ रही है। यद्यपि इनकी एक विशिष्ट जीवनशैली और संस्कृति है तथापि इनकी आस्था सभी पर्वो में सनातन देवी देवताओं के प्रति जुड़ीं हुई है। इनकी पूजा पध्दति पंच तत्वों और इनके पर्व त्यौहार प्रकृति पर आधारित है जिसमे वे भूमि, जल, वायु, अग्नि और आकाश की पूजा पूरी सिद्दत के साथ करते हैं।इनके संस्कारो में सर्वे भवन्तु सुखिनः, वसुधैव कुटुम्बकम और अतिथि देवो भवः की भावना कूट कूट कर भारी हुई है।

भिलाला जनजाति के संस्कार:-किसी भी समाज में संस्कार एक ऐसी सामाजिक मान्यता है जिससे व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्व बनता है।संस्कार समाज का बाहरी और भीतरी अंग होता है।अर्थात संस्कारो से ही व्यक्ति और समाज का स्वरूप निर्धारित होता है इनसे किसी समाज या व्यक्ति की दैनंदिनी क्रियाकलापों की जानकारी मिलती हैं।भिलाला समाज अपने संस्कारो के प्रति सजक और जागरूक है।और जीवन के प्रमुख संस्कार इस प्रकार है।

जन्म संस्कार:- भिलाला समाज मे जन्म संस्कार सामान्य रीति से सम्पन्न होते हैं। इनके यहाँ गोदभराई या नामकरण जैसे संस्कार तो नहीं होते, लेकिन गर्भवती महिलाओं को कुलदेवी का आशीर्वाद प्राप्त हो इसलिए गले या बाँह में गाँव पुजारा द्वारा धागा बंधवाया जाता है।इसका यह विधान भी है कि आने वाली संतान स्वस्थ हो और उसे किसी की बुरी नजर न लगे।संतान के जन्म के पश्चात सात या ग्यारह दिन में जच्चा एवं बच्चा दोनो के गले में हल्दी युक्त पीले धागे बांधे जाते हैं।इस संस्कार को जलवाई पूजन कहते हैं।जिसमे माता और बच्चे की नजर उतार कर पूजा की जाती है।सवा महीने तक प्रसूता के घर में सूतक का पालन किया जाता है।इस समय प्रसूता घर का कोई भी कार्य नही करती है।और पर्दे में रहती है। जलवाई के समय जो लोकगीत गाये जाते हैं उनमें स्त्रियां शिशु अगर लड़का हो तो उसके नाम के स्थान पर कृष्ण या राम का नाम लेती है तथा लड़की हो तो दुर्गा,लक्ष्मी या सरस्वती का नाम लेती है।इसके साथ ही उनके माता पिता के नाम के स्थान पर नंद-यशोदा या दशरथ-कौशल्या का नाम लेकर बधाई गीत गाती है। इस अवसर पर निमाड़ में गाया जाने वाला एक प्रसिद्ध गीत इस प्रकार है।

“काई बधाई छे जी आज बाबा नंद घर।
कान्हाजी नS लियो अवतार बाबा नंद घर।
1 पयली बधाई लक्ष्मीजी लाई।
लाई छे सगलो भण्डार बाबा नंद घर।
कान्हाजी नs लियो अवतार बाबा नंद घर।

2.दूसरी बधाई सरस्वती जी लाई।
लाई छे वेद पुराण, बाबा नंद घर।
3.तीसरी बधाई रिद्धि-सिध्दि लाई।
लाई छे सम्पति भण्डार, बाबा नंद घर।

इस प्रकार बारी बारी से सभी देवी देवताओं के नाम लेने बाद परिवारजनों के भी नाम लेकर बधाई गीत गाये जाते हैं।

भिलाला समाज ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण जनजाति समाज की सबसे बड़ी खासियत यह है कि यहाँ लड़का और लकड़ी में भेद नहीं किया जाता है दिनों के जन्म पर समान रूप से उत्सव मनाया जाता है।

विवाह संस्कार:-अन्य जातियों के समान भिलालो में भी विवाह एक अनिवार्य संस्कार है।विवाह दो आत्म ओ को पवित्र बंधन में बांधता है।अविवाहित पुरूष या स्त्री को समाज में ही नही बल्कि पितृलोक में भी सम्मान नही मिलता है ऐसी इनकी मान्यता। अविवाहित,बाँझ,एवं विधवा महिलाओ को शुभ कार्य में शामिल नही किया जाता है। प्रायः सभी रीति रिवाज सुहागन स्त्रियों के द्वारा ही सम्पन होते हैं।विवाह में

गणेश पूजन ,खड़माटी, हल्दी मेहँदी मंडप पेरावणी,मायना अर्थात पुरखों की पूजा बारात फेरे पाणी ग्रहण संस्कार बिदाई आदि सभी रीति रिवाज हिंदू धर्म के अनुसार ही सम्पन किये जाते हैं।केवल उनके स्वरूप में कुछ अंतर अवश्य होता है।जैसे कि जनजाति लोग फेरे प्रकृति के स्वाभानुसार सीधी दिशा अर्थात दाये से बाई ओर लिए जाते हैं।और विवाह की अवधि 3 से 5 दिनों की होती है। विवाह के अवसर पर किसी अनुष्ठान या पूजन के समय संभधित देवी देवताओं के तथा अन्य रीतियों में लाडा-लाड़ी के गीत गाये जाते हैं।

खडमाटी या गणेश पूजन का प्रचलित गीत :-

1.तुम तो बेगा बेगा आवो रे गणेश।
तुम बिन घड़ी ना सरे
तुमरो शीश मोटो रे गणेश ।
सवा मण सेंदूर चढ़े।
2. तुमरो पेट मोटो रे गणेश ।
सवा मण लड्डू चढ़े।
तुम तो बेगा----------------------

इस प्रकार गणेश जी के सभी अंगों का नाम लेकर गीत पूरा किया जाता है।

इसी प्रकार सभी संस्कारो में पारम्परिक लोकगीत गाते।बारात निकलते समय गाया जाने वाला एक प्रचलित गीत इस प्रकार है।

तालों दियो न कूची साथ म बना जी।
घर न बार केकS सोपियो बना जी।
नई रे भरोसो सगा बाप को बना जी।

तालों दियो--------------------------

10. मृत्यु संस्कार :-भिलाला जनजाति में किसी की मृत्यु हो जाने के बाद उसकी आत्मा की शांति के लिए विशेष अनुष्ठान गाँव पुजारा के सानिध्य में बड़े बेटे या भाई केद्वारा किया जाता है।यह जनजाति पुर्नजन्म में विश्वास करती है और यह माना जाता है कि बारह दिन तक आत्मा घर में निवास करती है।इसलिए मृत आत्मा की शान्ति के लिए दोनो समय उनके नाम से भोग आदि लगाया जाता है।घर की महिलाएं ग्यारह दिन तक सुबह 4 बजे संबंधित व्यक्ति (मृत) याद करके रोती है।इसके साथ ही आत्मा परमात्मा संबंधित भक्ति गीतों का गायन किया जाता है।इनमे विशेष रूप से मृदंग नामक वाद्य यंत्र का प्रयोग किया जाता है।साथ में मंजीरे भी बजाए जाते हैं।इस प्रकार के गीत गाने वालो की विशेष मंडलिया होती है।आश्चर्य की बात तो यह है कि इनके जीवन शोकजनक अवसर भी गीत और संगीत से अछूता नहीं है। निमाड़ का एक प्रसिद्ध मृत्यु गीत जो यहाँ के भिलाला समाज में भी गाया जाता हैं।जो इस प्रकार है।“ हँसा चल्लीया रे अकेला हँसा चल्लीया प्रदेश।

हँसा हीरा जनम बितायो,हँसा जीया भरपूर ।
हँसा दुनिया छोड़ी रे,हँसा गया रे बरमा लोक।
हँसा चल्लीया --”

इस प्रकार भिलाला समाज में मृत्यु के दसवे दिन कुटुंब के बेटे, भाई और मुंडन संस्कार करवाते हैं।लेकिन जो राठिया भिलाला होते हैं वे मुंडन नही करवाते हैं।

उपसंहार:-उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि भिलाला जनजाति के समस्त पारम्परिक त्यौहारो और जीवन के सभी संस्कारो में एक विशेष प्रकार की पूजा पध्दति और लोकगीतों का प्रयोग होता है।इन सभी अनुष्ठानो और गीतों में सनातन परंपरा और वैदिक देवी देवताओं का वर्णन सर्वत्र देखने को मिलता है।इस बात से भी नकारा नहीं जा सकता है कि जाति व्यवस्था के कारण अनुसूचित जनजाति समाज ऐतिहासिक रूप से पिछड़े रहे ओर उन्हें भारतीय समाज में सम्मान तथा समान अवसर नही दिया गया। प्राचीनकाल से ही यह जातियां छोटे बड़े समूह के रूप में रहते हुए सनातन परंपरा का निर्वहन करती आ रही है। इनकी एक विशिष्ट जीवनशैली और संस्कृति है जिसमें उनकी आस्था का आधार कोई ना कोई देवी देवता ही होता है। जनजाति समाज की रीढ़ है,क्योंकि यह समाज प्रारंभ काल से ही पंच तत्वों अर्थात जल,जमीन,जंगल,अग्नि, वायु और आकाश की पूजा करते आ रहे हैं। उनके नृत्य गीत, चित्रकला आदि में भी सनातनी तत्व देखने को मिलते हैं।जनजाति समाज हमेशा से ही अपनी धरती, धर्म अस्मिता और अस्तित्व के लिए संघर्ष करता आया है।वह अपने पुरखों पर अटूट श्रद्धा रखता आया है।लेकिन पाश्चात्य संस्कृति के प्रचार प्रसार से जनजाति समाज पर भी अपनी संस्कृति को बचाने का खतरा मंडरा रहा है।अतः सनातन को सुरक्षित रखना है तो रीढ़(जनजाति समाज) को मजबूत होना आवश्यक है। इसलिए सभी का यह दायित्व बनता है कि उनकी जाति, धर्म और संस्कृति को सुरक्षित व जीवित रखने के लिए हम सभी प्राणपण से जुटे रहे।

संदर्भ:

1. डॉ.सुरेंद्र सिंह नेगी संपादक नैतिक मूल्यों की प्रासंगिकता।
2. डॉ. कृष्ण लाल हँस, निमाड़ और उसका साहित्य।
3. रामनारायण उपाध्याय, निमाड़ का सांस्कृतिक इतिहास।
4. यशवंत घोड़ावत, आदिवासी दर्पण।
5. स्वयं साक्षात्कार एवं निरीक्षण द्वारा।सामग्री संकलन।

जनजातियां और हिन्दू धर्म

✍ माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर

घ्घ्घ्घ्घ्घ्घ्घ्

"अलगाववाद के इन नायकों का तर्क है कि ये 'आदिवासी' पेड़, पत्थरों और नागों जैसी चीजों की पूजा करते हैं। इसलिए वे 'एनिमिस्ट' हैं और उन्हें हिंदू' नहीं कहा जा सकता। ये एक अज्ञानी व्यक्ति का ही तर्क हो सकता है जिसे हिंदू धर्म की कोई समझ नहीं है। भारत में आज भी सभी लोग पेड़, तुलसी, बिल्व, नाग, गाय सूरज, पृथ्वी की पूजा करते हैं तो क्या हमें इन सभी भक्तों और उपासकों को 'एनिमिस्ट' कह देना चाहिए और उन्हें गैर-हिंदू घोषित कर देना चाहिए?"

पिछले वर्ष भारत सरकार ने आज़ादी की लड़ाई में विभिन्न जन जातियों के योगदान को याद करने के लिए बिरसा मुंडा की जयंती पर हर साल १५ नवंबर को मनाये जाने वाले दिवस को "जनजातीय गौरव दिवस" घोषित किया है। उनके इस वीरतापूर्वक संघर्ष को मान्यता देने में देश की सरकारों ने ७५ वर्ष लगा दिये । चलिए देर से ही सही, आखिर जन जातियों के योगदान को हमारी सरकार व हमने स्वीकार तो किया ।

जनजातियों को समाज के मुख्यधारा से विभाजित करना, उनसे संबंधित तरह तरह की भ्रांतियों को जन्म देना, और उनका विकास नहीं होने देने का श्रेय औपनिवेशक प्रशासकों और विदेशी मानवजाति वैज्ञानिको को जाता है। ईस्ट इंडिया कंपनी और धर्म प्रचारकों ने मिल कर "जनजातियों के एक अलग वर्ग का निर्माण किया जिससे जनजातियों और हिन्दू समाज के बीच रिश्तो में कड़वाहटे आये और दोनों के संबंधो के बीच दूरियां बढे उसके लिए ऐसी कुशल नीतियां बनाई गई । जिनका उद्देश्य जनजातियों को उनके पारंपरिक अधिकारों से वंचित रखना और उनका शोषण करना था ताकि वनों की संपन्न संसाधनो पर कब्ज़ा किया जाये। और जनजातियों को भोजन, पारंपरिक, रहन सहन के स्त्रोतों से वंचित रखा जाए जिसके फलस्वरूप बड़े पैमाने पर उनका धर्मान्तरण किया जा सके ।

ऐसे हालात में सभी जनजातियों ने आपस में मिलकर अपने परंपरागत हथियारों से अंग्रेज़ो के खिलाफ आंदोलन किया और लंबी लड़ाई लड़ी। जिनमें मुख्य नाम बिरसा मुंडा, तिलका मांझी, बुधु भगत, तिरोत सिंह ने अपनी साहसी प्रवृत्ति का परिचय दिया।

सत्य तो यह है कि हिन्दू धर्म और जनजातियों के बीच बहुत गहरा संबंध है, चाहे वो शिल्पकला, चित्रकला, धार्मिक कथाएं, लोकगीत, लोकनृत्य रीति रिवाज़ हो । इनमे से एक प्रधान उदहारण है देवताओं, नाग और धरती माँ का पूजन। भारत में सांपो की पूजा समृद्धि और शक्ति के लिए की जाती है और धरती माँ को भू देवी दुर्गा, काली, पार्वती के रूप में पूजा जाता है। जनजातियां हिन्दू समाज की तरह ही मूर्ति, पत्थर या कंकड़ को पूजते है।

अध्यात्म विज्ञान में धर्म का वास्तविक अर्थ धार्मिकता है। धर्म लोगों को जोड़ने का काम करता है। धर्म सर्वव्यापी है। यह जीवन जीने का सही तरीका है। यह धर्म ही है जो हमें सिखाता है कि समाज में मिलजुलकर और सद्भावना के साथ कैसे रहें । धर्म जन जन में मानवता, वसुधैव कुटुम्बकम और राष्ट्रीयता को विकसित करने में मदद करता है। यह वही धर्म है जो मानव विकास को उनकी चेतना की ओर समृद्ध करने के लिए मार्गदर्शन करता है। भारत में कई प्रतिष्ठित विद्वानों और व्यक्तियों द्वारा इसे आगे बढ़ाया जा रहा है।

जनजातियों का समूह हमेशा अपनी मूल जड़ों, परम्पराओ और अपने विश्वास से जुड़े रहता हैं क्योंकि अभी भी वे आधुनिकीकरण से बहुत दूर हैं । अपनी धार्मिक मान्यताओं के आधार पर ही वे आगे बढ़ते हैं । आधुनिक भारत में यही लोग हमारे प्राकृतिक और सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षक हैं। हमारी पीढ़ियों की नजर में आज भी हमारे धर्म को जीवित रखा है। वे वही हैं जिन्होंने प्रकृति के पक्ष में स्टैंड लिया है और वाकई में इसके बारे में चिंतित हैं।

हिंदू धर्म में उनकी जड़ें बहुत ही गहरी हैं जैसे सभी तांत्रिक मंदिरों का आध्यात्मिक संबंध आदिवासी क्षेत्र में पाया जाता है। सभी मंदिर जिनमें अपार शक्ति है वह आदिवासी क्षेत्र में ही हैं। प्रकृति ही उनकी सुरक्षा है। वे पुरानी आध्यात्मिक प्रथाओं को समृद्ध करते हैं जैसे काला जादू जो असम और पश्चिम बंगाल में पुरानी शैलियों के लिए जाना जाता है, जिसके बारे में सिर्फ पुराने ट्राइबल लोग ही जानते हैं। 64 योगिनी मंदिर भी आदिवासी क्षेत्र में है। अघोरी और अन्य भी उसी सभ्यता के अंग हैं और जो इस प्रथा को जीवित रख रहे हैं।

भगवान वेंकटेश्वर की पूजा कुरुम्बा, लम्बाडी, येरुकुला, येनाडी और चेंचू जैसी जनजातियों द्वारा की जाती है। इसी तरह भगवान जगन्नाथ, देवी, नाग, गणेश आदि का भी पूजन होता है । यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि महाभारत के उल्लेख में विभिन्न योद्धा जनजातियाँ हैं, लगभग 38 जनजातियाँ पांडवों की, कौरवों की 58 जनजातियों और 264 ऐसी जनजातीय जिन्होंने युद्ध में भाग नहीं लिया।

शिव

शिव की पूजा अनादिकाल से आदिवासियों द्वारा पूरे भारत में लिंगम के रूप में की जाती है। पहाड़ों, जंगलों, पहाड़ियों में रहने वाले लोग इसकी पूजा करते थे। शिव को देवताओं को प्रसन्न करने में सबसे आसान माना जाता है, जो दयालु हैं और जिनका कोई आदि या अंत नहीं है। उनके प्रमुख नाम शंकर, नीलकंठ, पशुपतिनाथ, भोलेनाथ, आशुतोष, केदारनाथ, चिदंबरम, त्र्यंबकेश्वर आदि हैं। उन्हें महादेव भी कहा जाता है,

जिनका व्यक्तित्व अन्य देवताओं के पिता समान है। संथाल झारखंड का सबसे बड़ा आदिवासी समुदाय है जो शिव की पूजा करता है। वे मारंग बुरु की पूजा करते हैं (मारंग मतलब बड़ा, बुरु मतलब पहाड़), जो एक बड़े पहाड़ पर रहता है। और हम सभी जानते हैं कि शिव कैलाश पर्वत में रहते हैं।

यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि बैद्यनाथ के ऐतिहासिक ज्योतिर्लिंगों में से एक देवगढ़ में है, जिसे संथालो का किला माना जाता है है और यही जगह इनके क्षेत्र का प्रवेश द्वार है । संथाल शिव को प्रकृति, पृथ्वी, जल और संपूर्ण ब्रह्मांड का निर्माता मानते हैं। उनकी मान्यताओं के अनुसार, जब ब्रह्मांड में केवल पानी था, तब संथाल अपनी सुरक्षा के लिये विलम्ब हो रहे थे। उन्हें मारंग बुरु का "मस्तक" दिखा और उस पर चढ़ गए। और उनका मानना था कि मारंग बुरु ने पृथ्वी को बनाया है। त्योहारों के विभिन्न समारोहों में, मारंग बुरु को गुड़ का छोटा टीला बनाकर या कभी-कभी गोल पत्थर या कंकड़ को मारंग बुरु के रूप में पूजा जाता है। इस जनजाति के घरों की डिजाइनिंग पर ध्यान देना बहुत दिलचस्प है। एक चीज जो ध्यान आकर्षित करती है वह है उनके दरवाजों का आकार जो बहुत छोटा है जो इस तथ्य को दर्शाता है कि इसमें प्रवेश करने वाले किसी भी व्यक्ति को दरवाजे के ऊपरी लकड़ी के हिस्से के प्रति सम्मान दिखाने के लिए अपना सिर झुकाना चाहिए, जो महादेव का प्रतीक है।

शिव की दन्तकथाए यहीं खत्म नहीं होती हैं। झारखंड का तीसरा सबसे बड़ा आदिवासी समुदाय उरांव है जो देवकी नामक स्थान पर गग्गर नदी के तट पर हजारों लिंगों की पूजा करता है। इस स्थान का संबंध रामायण की एक घटना से है। ऐसा माना जाता है कि लंका जाते समय श्री राम ने लक्ष्मण और सीता के साथ इस स्थान का दौरा किया था जहाँ श्री राम ने शिवलिंग की पूजा की थी और इस तरह नदी का पानी शुद्ध हो गया था। और जब शिव राम की मदद करने के लिए उरांव जनजाति के नेता के सपने में प्रकट हुए, तो पूरे समुदाय ने श्री राम को उनकी यात्रा के माध्यम से नेविगेट करने में मदद की। आंध्र प्रदेश और कर्नाटक राज्यों में वीरशैव नामक एक और समुदाय है। उनकी परंपराओं में "बीजम्मा" नामक शिव की एक उत्साही भक्त है जो भगवान को "माता-पिता रहित" के रूप में देखकर आश्चर्यचकित होती है और उसके बारे में पूछती है। यह कथन बहुत लोकप्रिय है जो भक्त के बहुत प्रश्नों के उत्तर देता है।

इसी तरह एक अन्य जनजाति जिसे "गद्दी" कहा जाता है - अर्ध कृषक और एक देहाती समुदाय है। वे पश्चिमी हिमालय की धौलाधार श्रेणी में रहते हैं। उनकी लोकप्रिय कथाओं में से एक है जब इस समुदाय के राजाओं ने शिव को प्रसन्न करने के लिए तपस्या की, तो भगवान ने उन्हें इस पवित्र भूमि पर बसने की अनुमति दी। उनका यह भी मानना है कि कोट, कमरबंद और नुकीली टोपी की उनकी पारंपरिक पोशाक शिव ने ही प्रदान की है। वे शिव को अनाजगुरु मानते हैं - (वह बीज जिसने सब कुछ खोजा)। दिलचस्प मान्यताओं में से एक का कहना है कि गद्दी स्वयं शिव द्वारा अपने शरीर से ली गई गंदगी से बनाये गए थे ।

जगन्नाथ

कुछ संस्कृत ग्रंथों के अनुसार भगवान जगन्नाथ के अवतार, नील माधव के प्रथम उपासक आदिवासी ही थे। नील माधव के बारे में समझने के लिए दो प्रकार के स्रोत हैं, एक है वैदिक ग्रंथ जैसे ब्रह्म पुराण, स्कंद पुराण आदि, और दूसरा सरला दास द्वारा महाभारत, शुशु कृष्ण दास द्वारा देवला टोला आदि। नीलमाधव मूल रूप से एक आदिवासी देवता हैं। आज भी जगन्नाथ पुरी में पुजारी और मुख्य पुजारी सावरस समुदाय से हैं और हजारों सालों से वही रीति-रिवाजों का पालन किया जाता है।

आदिवासी समुदाय जिन्हें सवरस कहा जाता है, वे वृक्ष उपासक हैं और उनके लिए पोल या लकड़ी के खंभे की पूजा करना एक केंद्रीय विचार है। वे नीम की लकड़ी से संरचना को तराशने की कला और तकनीक जानते थे। शायद इसी तरह से भगवान जगन्नाथ की संरचना की कल्पना की गई होगी। वास्तव में प्राचीन काल से पुराणों के आधार पर श्रीक्षेत्र पुरी में इसकी पूजा की जाती थी। कुछ विद्वानों का मत है कि सवरासो द्वारा भगवान जगन्नाथ को "बुद्ध विहारा" के रूप में पूजा जाता था। महाभारत और मनु के धर्म शास्त्र में “ओद्र"साम्राज्य के बारे में उल्लेख है जो कि सावरों द्वारा बसा हुआ था। लकड़ी की मूर्ति के नवीनीकरण की परंपरा भी एक आदिवासी रिवाज है। आज भी सवरस पेड़ नहीं काटते क्योंकि उनका मानना है कि "किटुंग" या प्रकृति देवता पेड़ों में निवास करते हैं।

नाग

महाभारत में नागा जनजाति का उल्लेख योद्धाओं के रूप में मिलता है। यहां तक कि रामायण में भी उल्लेख है कि नागा वे थे जिन्होंने हनुमान को समुद्र पार करते देखा था। नागा महिलाएं अपनी खूबसूरती के लिए जानी जाती हैं। नागा बहुत शक्तिशाली थे और तक्षशिला से लेकर असम और पूरे दक्षिण भारत में श्रीलंका तक उनका शासन था। ऐसा माना जाता है कि नागों ने ही राजा परीक्षित को मारा था। नागा पंथ के उदय के कारणों में से एक है मनुष्यों का सांपो से डर, जो उनके विनाश का कारण बन सकता है। नागाओं के अलावा, भारत के पूर्वी हिस्से में मनसा देवी (नागिन देवी) की भी जोरदार पूजा की जाती है। एक अन्य चार नाग देवता 'तक्षक" हैं जिनका उल्लेख महाभारत में मिलता है। कुरु राजाओं, परीक्षित और उनके पुत्र जनमेजय के बारे में महाभारत की कहानियों में तक्षक प्रमुख नागा नायक हैं।

देवी

आदिवासी समाजों में, महिलाओं को मातृ प्रकृति के रूप में माना जाता था और उन्हें प्रजनन क्षमता के स्रोत के रूप में देखा जाता था। साथ ही वे समाज जो देवी की पूजा करते थे वे महिला प्रधान थे और देवी की पूजा बीमारियों को मिटाने, बुरी आत्माओं को दूर करने, भोजन और आश्रय, बाढ़, आग और प्राकृतिक आपदाओं से लड़ने के लिए करते थे। असम में, खासी जनजाति कामाख्या देवी की पूजा करती है और विद्वानों का मानना है कि इसकी उत्पति पूरी तरह से अनुष्ठानों और लक्षणों में आदिवासी है। चुटिया कचारी जनजाति महिला सशक्तिकरण को प्रमुख महत्व देती है और देवी माँ के महत्व के कारण लड़ाई और

हर सामाजिक गतिविधि में भाग लेने की स्वतंत्रता देती है। इसी तरह उड़ीसा में, गोंड और जुआंग का मानना है कि महिला देवताओं की पूजा करने से पुरुष देवताओं की पूजा होती है। इसलिए भूतों और बुरी आत्माओं को दूर करने के लिए देवी की पूजा करें। कोंड उड़ीसा की पहाड़ी जनजातियाँ हैं जो "खंबेश्वरी" - वृक्ष देवी की पूजा करती हैं। इसकी पूजा “सुधा-देहुरी” नामक एक आदिवासी पुजारी द्वारा की जाती है जो लकड़ी की मूर्ति के नवीनीकरण के जटिल अनुष्ठान करता है। इसी तरह, उत्तर प्रदेश में आदिवासी अहेरिया देवी की पूजा करते हैं, जबकि गुजरात के वाघरी अपनी स्थानीय देवी जैसे खोदियार माता, मेधी माता, चामुंडी माता, विहट माता आदि की पूजा करते हैं।

मसूलीपट्टनम (आंध्र) में आदिवासियों के अलावा, जो मुख्य रूप से मछुआरे हैं, वे 7 देवी की पूजा करते हैं: देवी छिन्निंटम्मा (घर की मुखिया), मुत्यालम्मा (मोती की देवी), चल्लालम्मा (जो छाछ की अध्यक्षता करती हैं), घंटालम्मा (जो घंटियाँ पहनती हैं), देवी यम्परम्मा (जो व्यापार करता है), ममिलम्मा (आम के पेड़ के नीचे बैठी देवी), गंगम्मा (चेचक से रक्षा करने वाली देवी) ।

मुरुगन:

तमिलनाडु में आदिवासियों के बीच मुरुगन को एक आदिवासी देवता माना जाता है। उन्हें "प्रकृति का देवता" भी कहा जाता है। कुछ आदिवासी इसे दक्षिण भारत में कल्लर और मारब द्वारा "चोरों और लुटेरों के देवता" के रूप में मानते हैं। नागरथर, सेनगुंथर और कुरावर जैसी कुछ जनजातियां मुरुगन को उनके दिव्य पूर्वज होने का दावा करती हैं।

निष्कर्षः

से इसी तरह अन्य देवता भी हैं जिन्हें आदिवासी देवता माना जाता है जैसे तिरुपति के वेंकटेश्वर, नरसिम्हा, कृष्ण आदि। आदिवासियों का आध्यात्मिकता, प्रकृति के प्रति सम्मान, परिवारों और उत्सवों को बनाए रखने की उनकी महत्वता उनके मानस और दर्शन में बहुत अधिक निहित है। हिंदू धर्म में भगवान की अवधारणा जटिल है क्योंकि यह "ईश्वरता" पर केंद्रित है न कि ईश्वर पर यह हर उस चीज की पूजा करता है जो प्राकृतिक है जिनकी वजह से मनुष्य का अस्तित्व है। इसलिए भगवान की पूजा लकड़ी, पेड़, आकाश, समय, विजय, कृषि, सत्य, आदि के रूप में की जाती है। हिंदुओं और आदिवासियों के बीच समानताएं समान हैं जब दिवाली या पोंगल जैसे प्रमुख त्योहारों को मनाने या गायों को पवित्र मानने या गोबर के उपले का उपयोग करने की बात आती है । यह देखना चिंताजनक है कि हिंदुओं और आदिवासियों को विभाजित करने के लिए कठोर प्रयास किए गए हैं। मिशनरियों द्वारा आदिवासियों को लगातार राइस बैग्स में परिवर्तित किया जाता है, जिनका उपयोग विद्रोह और आतंकवाद में होता है, जो देश की आंतरिक सुरक्षा और अखंडता के लिए खतरा हैं। इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ऐसे अनगिनत सबूत हैं कि आदिवासी हिंदू हैं और आदिवासियों को हिंदू पहचान से जोड़ने के लिए जागरूकता फैलानी चाहिए।

सन्दर्भ :

जैन संध्या २०१८, आदिदेव आर्य देवता नई दिल्ली प्रभात प्रकाशन

https://www.deshbandhucollege.ac.in/pdf/resources / 1585794565 HS(H)-IV-GE-CH1.pdf

https://wwww.youtube.com/watch?v=vedqxY6Nnu8

https://wwww.youtube.com/watch?v=kcll-jj9QeU

http://ignca.gov.in/PDF_data/Shiva Legends Sacred Traditions.pdf

https://historyofodisha.in/tribal-origin-of-the-cult-of-the-jagannath/

https://medium.com/@ashishsarangi/jagannatha-the-tribal-connection-73b2fde5d4c5

https://aknandy.wordpress.com/2016/12/11/history-says-jagannath-was-a-tribal-deity-adorned-by-the-sabar-people-as-a-symbol-of-narayan/

https://munnabbsr.wordpress.com/2011/05/31/the-tribal-diety-lord-jagannath/

https://www.yumpu.com/en/document/read/11956583/lord-jagannath-the-tribal-deity

http://www.nairs.in/nagas.htm Borah S (2018), Nagas: The Religious Pantheon of Ancient India, ISSN 2347-5153

http://magazines.odisha.gov.in/Orissareview/sept-oct-2005/engpdf/The%20Concept%20of%20the%20Goddess%20Khambhesvari.pdf

https://www.youthkiawaaz.com/2020/10/this-is-how-tribals-in-tripura-worship-the-gods-of-prosperity-and-protection/

https://www.livehistoryindia.com/story/monuments/gujarats-portable-temples

https://www.sundayguardianlive.com/opinion/declaring-tribals-non-hindus-shows-lack-understanding-bharat

Das D. (2022). Female goddess worship cult in Tribal Society of Assam: A Sociological Study, Journal of Positive School Psychology

??????????

सभ्यता संवाद्

सदस्यता–प्रपत्र

मेरी प्रति कूरियर रजिस्टर्ड डाक द्वारा इस पते पर प्रेषित की जाए :

नाम ....

....

पता ....

.... पिन ....

दूरभाष/मोबाइल ....

ईमेल ....

सदस्यता शुल्क (डाक खर्च सहित)

व्यक्तिगत - वार्षिक सदस्यता शुल्क 500/– पाँच वर्षीय सदस्यता शुल्क 2500/–

संस्थागत - वार्षिक सदस्यता शुल्क 1000/– पाँच वर्षीय सदस्यता शुल्क 5000/–

संलग्न मनीऑर्डर चेक डिमाण्ड ड्राट

चेक/ड्राफ्ट-क्रमांक................. बैंक का नाम................. शाखा............. दिनांक..........

ऑनलाइन भुगतान कर सकते हैं-

Centre for Civilisational Studies
Bank Name : ICICI
A/c No. 022705001874
IFSC Code : ICIC0000227

हस्ताक्षर एवं दिनांक

सभ्यता संवाद

विज्ञापन दरें

विज्ञापनक दर

बैक कवर पेज (कलर)	:	50,000
फ्रंट कवर इनसाइड पेज (कलर)	:	30,000
बैक कवर इनसाइड पेज (कलर)	:	30,000
डबल स्प्रेड पेज (कलर)	:	40,000
इनर पेज (श्वेत/श्याम)	:	20,000
हाफ पेज (श्वेत/श्याम)	:	10,000

विज्ञापन राशि सेंटर फॉर सिविलाईजेशनल स्टडीज के नाम से चेक/डिमांड ड्राफ्ट/एनईएफटी के माध्यम से लिया जाता है। बैंक विवरण निम्नलिखित है-

बैंक खाता विवरण

नाम	:	सेंटर फॉर सिविलाईजेशनल स्टडीज (Center for Civilisational Studies)
खाता संख्या	:	022705001874
आईएफएससी कोड	:	ICIC0000227
बैंक शाखा	:	दिल्ली यूनिवर्सिटी, दिल्ली

आगामी अंकों के संभावित विषय

जुलाई-अगस्त-सितम्बर, 2022 अंक

मूलनिवासी दिवस और भारतीय एकात्मता

विभेदकारी शब्दों का मायाजाल

मूलनिवासी, आदिवासी, प्रकृतिपूजक, द्रविड़

जनजातीय समाज तथा सनातन के अंतस्संबंध

लोक, नागर तथा आरण्यक समाज के अंतस्संबंध

धार्मिक, आध्यात्मिक तथा कर्मकांडीय समानता

विभेदकारी प्रयास तथा षड्यंत्र और उसके समाधान

मतांतरण, अलगाववाद और नक्सली हिंसा

अक्टूबर-नवंबर-दिसंबर, 2022 अंक

नारी सशक्तीकरण का भारतीय परिप्रेक्ष्य

नारी सशक्तीकरण : वैश्विक अवधारणा व
भारतीय हस्तक्षेप की आवश्यकता

स्त्री स्वास्थ्य: मान्यताएं, तर्क और विज्ञान

स्त्री-पुरूष समन्वय : सृष्टि कल्याण का वैज्ञानिक आधार

स्त्री का सम्मान : समकालीन विज्ञापनों के आईने में

घरेलू हिंसा निषेध : समाज शासित परम्पराएं व
आधुनिक विधिक परिप्रेक्ष्य

राजर्षि मनु की दृष्टि में स्त्री स्वातंत्र्य

विवाह-पूर्व व विवाहोत्तर करिअर का स्त्री पक्ष

राजनीति में नारी सहभागिता: आवश्यकता, अतीत व वर्तमान

वर्ष 4 ◆ अंक 2 ◆ चैत्र-वैशाख-ज्येष्ठ, 5124 कलि. ◆ अप्रैल-मई-जून, 2022 ई., मूल्य : ₹ 100

लेखकों से निवेदन

सभ्यता–संवाद एक त्रैमासिक शोध पत्रिका है। इसमें हिंदी भाषा में उच्च कोटि के अनुसंधानात्मक, आलोचनात्मक तथा समीक्षात्मक शोध–निबंध प्रकाशित किए जाते हैं। लेख प्रेषित करने से पूर्व निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है:

- कृपया मौलिक, अप्रकाशित, अप्रसारित निबंध भेजें। आपका लेख पहले से वेब पर किसी भी वेबसाइट या लॉग आदि में प्रकाशित नहीं होना चाहिए। निबंध के शीर्षक के ऊपर मौलिक एवं अप्रकाशित अवश्य लिखें।
- सभ्यता संवाद के लिए भेजे जाने वाले निबंध 2500 शब्दों से कम न हों, अधिकतम शब्द सीमा 5000 है। व्यक्तिगत स्तंभ के लिए भेजे जाने वाला लेख 2000 शब्दों से अधिक का न हो।
- कृपया अपने लेख में संदर्भ अंकित करने के मानकों का पालन करें। संदर्भ देते समय पुस्तक/पत्रिका का नाम, लेखक/संपादक का नाम, प्रकाशक का नाम-स्थान, प्रकाशन वर्ष का उल्लेख होना आवश्यक है।
- पत्रिका के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए आपके लेख का शीर्षक बदलने, वाक्यांशों, अनुच्छेदों में परिवर्तन करने अथवा इसमें संपादन करने का अधिकार संपादक मण्डल के पास है।
- आपके शोध-निबंध को पत्रिका में प्रकाशित करने या न करने के बारे में अंतिम निर्णय संपादक-मण्डल का ही होगा। स्वीकृत रचनाओं के प्रकाशन में एक से तीन अंकों का समय लग सकता है। अस्वीकृत रचनाओं के विषय में पत्र व्यवहार नहीं किया जाता है।
- कृपया अपना निबंध यथासंभव टंकित करके अथवा सुपाठ्य अक्षरों में हस्तलिखित शोध पत्र रवि शंकर, संपादक, सभ्यता संवाद, बी 14, गली नं. 13 वजीराबाद गांव, दिल्ली-110084 पते पर प्रेषित करें। सॉफ्ट कॉपी sabhyatasamvad@gmail.com पर ईमेल अवश्य करें। सॉफ्ट कॉपी में लेख मंगल यूनिकोड अथवा कृतिदेव-010 फॉण्ट में टाइप किया हुआ होना चाहिए।
- कहानी, लघुकथा, कविताएं, प्रहसन, प्रेरक-प्रसंग, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य, आत्मकथा, डायरी, आलोचना, यात्रा वृतान्त न भेजें।
- पुस्तक समीक्षा के लिए पुस्तक की दो प्रतियां भेजना अनिवार्य है। पुस्तक की समीक्षा, पत्रिका द्वारा अपने स्तर पर करवाकर पक्राशित की जायेगी, अतः समीक्षा साथ न भेजें। पुस्तक-समीक्षा के लिए पत्रिका के अगले दो अंकों से पूर्व पत्र-व्यवहार न करें।
- प्रथम बार लेख भेजने वाले लेखक कृपया अपना पूरा परिचय एवं चित्र भी संलग्न करें।

सभ्यता अध्ययन केन्द्र

बी14, गली. नं. 13, वजीराबाद गांव, दिल्ली–110084, **दूरभाष : 901783196, 9899588033**

ईमेल : sabhyatasamvad@gmail.com, www.civilisationalstudies.org

फेसबुक : https://www.facebook.com/sabhyatasamvad/

सभ्यता अध्ययन केन्द्र के लिए रवि शंकर द्वारा बी–14, गली नं. 13, वजीराबाद गाँव, दिल्ली–110084 से प्रकाशित एवं प्रिंट-वे, 182 एफआईई, पटपड़गंज, इण्डस्ट्रियल एरिया, नयी दिल्ली–110092 से मुद्रित। संपादक: रवि शंकर